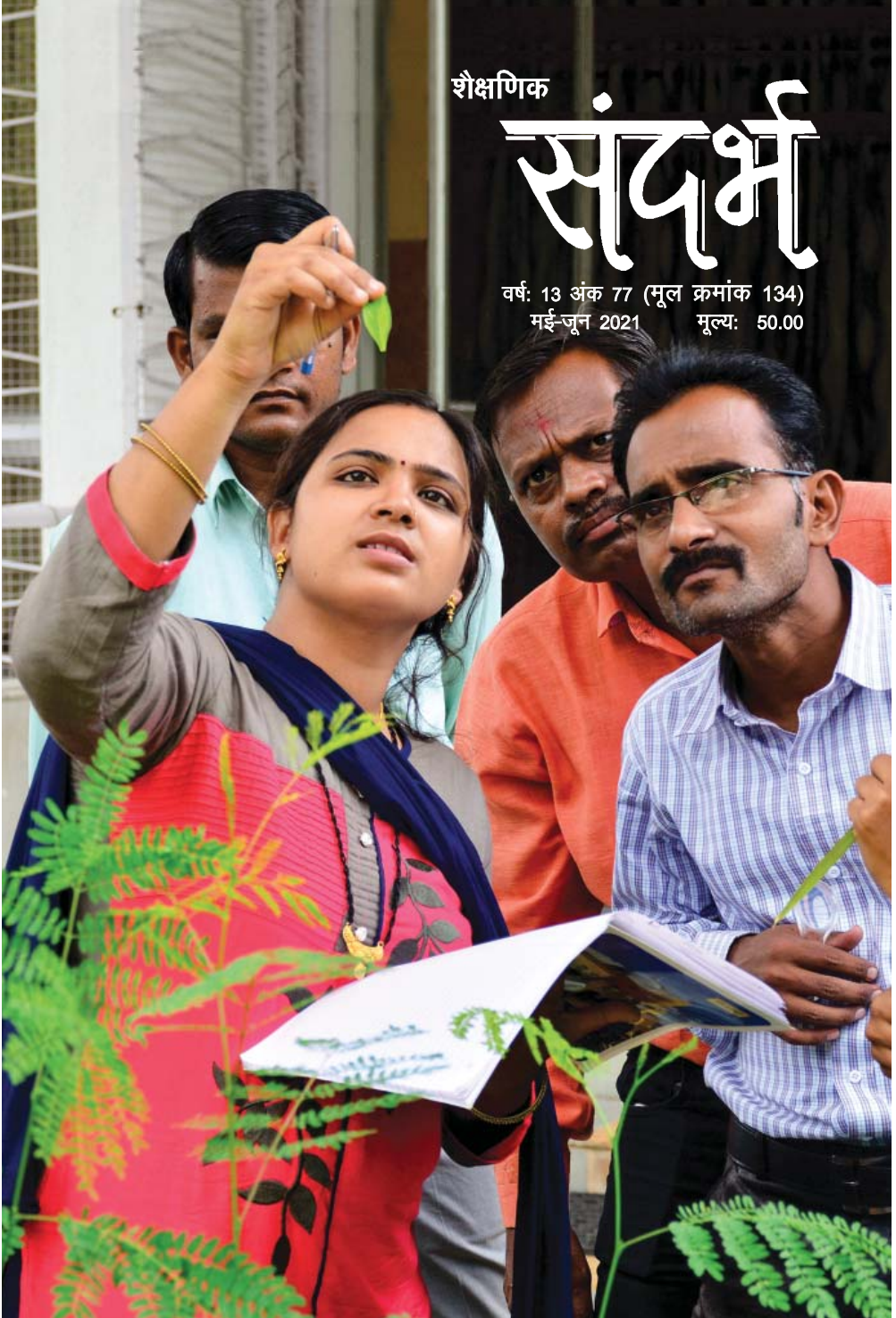

शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 13 अंक 77 (मूल क्रमांक 134)
मई-जून 2021 मूल्य: 50.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

प्रबन्धकीय सह-सम्पादक
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
कोकिल चौधरी
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण
राकेश खत्री
मोहित वर्मा

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
कमलेश यादव

शैक्षणिक
संदर्भ

वर्ष: 13 अंक 77 (मूल क्रमांक 134)
मई-जून 2021

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 73
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से इसलिए सदस्यता शुल्क में वृद्धि की जा रही है।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ: *महाराष्ट्र की आश्रमशालाओं के शिक्षकों के लिए विज्ञान सीखने-सिखाने के गतिविधि आधारित एक सत्र में प्रयोग करने में तल्लीन शिक्षकों का एक समूह।* ऐसे सत्रों में उभरे मुद्दों और प्रशिक्षण विधि की गहरी समालोचना को विस्तार से पढ़ते हैं इस लेख में, पृष्ठ 43 पर। चित्र – मोहित वर्मा।

पिछला आवरण: ***पैंथर कैप मशरूम।*** फफूँद या कवक या फंजाइ की प्रजातियाँ विविध हैं, इनमें कई अद्वितीय गुण हैं: कुछ हानिरहित, कुछ उपयोगी और कुछ हानिकारक। फफूँदों के अनोखे संसार के बारे में पढ़िए विस्तृत लेख पृष्ठ 23 पर।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : Cover 3 - https://en.wikipedia.org/wiki/Spider#/media/File:Spiders_Diversity.jpg
Cover 4 - https://www.britannica.com/science/fungus

शैक्षणिक

संदर्भ

"संदर्भ अब रजिस्टर्ड डाक से
यानी आप तक पहुँचना सुनिश्चित।"

संदर्भ की सदस्यता दर बढ़ाई जा रही है ताकि
संदर्भ रजिस्टर्ड डाक द्वारा आप तक भेजी जा सके

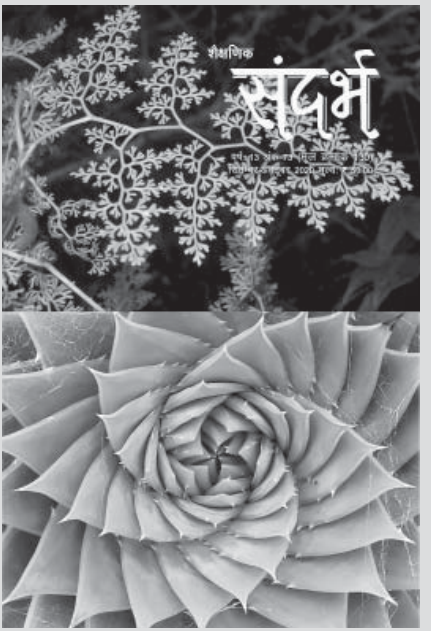

एक प्रति का मूल्य 50 रुपए

सदस्यता शुल्क

एक साल
450 रुपए

तीन साल
1250 रुपए

आजीवन
8000 रुपए

प्रति बाउंड वॉल्यूम
300 रुपए

ई-मेल: pitarakart@eklavya.in
वेबसाइट: www.pitarakart.in

क्यों करें प्रयोग?

विज्ञान शिक्षण में एक अहम सवाल हमेशा उठता है कि विज्ञान की कक्षा में गतिविधियों की क्या ज़रूरत है और क्यों कई शिक्षक इसके लिए राज़ी नहीं हो पाते हैं। एक तर्क यह दिया जाता है कि चूँकि वैज्ञानिक सिद्धान्तों का तकाज़ा होता है कि हम मात्र उन अवलोकनों पर ध्यान केन्द्रित करें जो अन्वेषणाधीन परिघटना के लिए प्रासंगिक हैं और शायद शिक्षक इन तथ्यों को सन्तोषजनक ढंग से प्रस्तुत न कर पाए, तो क्या इसी वजह से प्रयोगों को न करें? उपरोक्त लेख में विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में गतिविधियों के तौर पर दिए गए प्रयोगों की प्रकृति और शिक्षकों की उनको लेकर समझ, साथ ही प्रयोग कराने में शिक्षकों की झिझक पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। आइए, विज्ञान की कक्षा में गतिविधियों के पक्ष में कुछ और कारणों को पढ़ते-समझते हैं।

07

शक्तिशाली... सर्वव्यापी... फफूँद

मशरूम से लेकर मोल्ड से लेकर यीस्ट तक, हज़ारों की संख्या में ऐसे जीव, कवक की छत्रछाया में आते हैं। वनस्पति शास्त्री और अन्य जीव-वैज्ञानिक फफूँद को कवक या फंजाइ भी कहते हैं। पहले केवल पौधे समझी जाने वाली यह फफूँद अपने स्वयं के टैक्सोनॉमिक साम्राज्य के रूप में उभरी हैं। इनकी प्रजातियाँ विविध हैं, जिनमें कई अद्वितीय गुण हैं: कुछ हानिरहित, कुछ उपयोगी और कुछ हानिकारक। फफूँदों में पोषण और रहन-सहन, उनकी बनावट और प्रजनन व जनसंख्या वृद्धि के तरीके आदि की विशेषताओं और भिन्नताओं के अनोखे संसार को हम जानने और समझने की कोशिश करेंगे इस लेख के माध्यम से।

23

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-77 (मूल अंक-134), मई-जून 2021

इस अंक में

04 | आपने लिखा

07 | क्यों करें प्रयोग?
उमा सुधीर

23 | शक्तिशाली... सर्वव्यापी... जीवन का आधार... फफूँद
चेतना खांबेटे

43 | शिक्षकों के लिए विज्ञान करके सीखने की कार्यशाला...
अनीश मोकाशी, गुरिंदर सिंह और हनी सिंह

61 | मुश्किल नहीं है बच्चों को गिनती सिखाना
कालू राम शर्मा

71 | मन के चित्रों और खयालों से...
वरुण गुप्ता

81 | छतरी
मंज़ूर एहतेशाम

87 | दविन्दर कौर उप्पल - एक ज़बरदस्त शिक्षिका
श्याम बोहरे

90 | ठण्ड के दिनों में सुबह हमारे मुँह से भाप क्यों निकलती है?
सवालीराम

आपने लिखा

संदर्भ का 132वाँ अंक पढ़ा। आम तौर पर मैं भाषा शिक्षण और पुस्तकालय से जुड़े लेख पढ़ने के लिए सन्दर्भ तलाशता हूँ। बेशक, *संदर्भ* में वो तलाश पूरी भी होती है। इस अंक में नंदा शर्माजी का *लालाजी के लड्डू से खुले चर्चा के द्वार* में तीनों ही शिक्षिकाओं ने जिस तरह से कक्षा में चर्चा को आगे बढ़ाया, उसके लिए वे सचमुच लड्डुओं की हकदार हैं। इतनी कम उम्र में जेंडर कैसे बच्चों के मन में घर कर लेता है और उस पर कोई बात नहीं होती है। यह लेख उस नज़रिए से भी बहुत महत्वपूर्ण है। यह भी कहना पड़ेगा कि बच्चों के स्तर को देखते हुए जो सवाल उनसे किए गए, वो भी एक परिपक्व शिक्षक की क्षमता का बेहतरीन उदाहरण है।

कहानी *अप्रवासी* ने जो समाँ बाँधा, वो सच में काबिल-ए-तारीफ लगा। पूरे समय एक जिज्ञासा के साथ पाठकों को बाँधे रखना सब कहानियों में नहीं हो पाता। कहानी पढ़ने के बाद पता चला कि जेर्राड वीलन युवाओं के लिए लिखने वाले प्रसिद्ध लेखक हैं। युवाओं के नज़रिए से यह कहानी एकदम फिट बैठती है। आशा है, उनकी और कहानियाँ पढ़ने का मौका मिलेगा।

एक फूटा थर्मामीटर और सविनय अवज्ञा में विज्ञान और राजनीति के सम्बन्ध को जोड़कर जिस तरह से पेश किया गया है, वह अद्‌भुत है। यह सम्बन्ध न सिर्फ दो विषयों को जोड़ता है बल्कि दो देशों में हो रही घटनाओं को भी एक मंच पर लाकर खड़ा कर देता है, और यह भी दिखाता है कि खोज हमारी ज़िन्दगी को कैसे प्रभावित करती है।

बेहतरीन लेखों के प्रकाशन के लिए टीम को बधाई!

महेश झरबड़े

मुस्कान, भोपाल

संदर्भ अंक-133 में लेख *कोरोना काल में बच्चों की मनोस्थिति पर एक नज़र* पढ़ा। वाकई कोरोना और तालाबन्दी के कारण सभी उम्र के लोगों के स्वास्थ्य व उनकी मन:स्थिति पर बहुत बुरा असर पड़ा है, साथ ही सामाजिक और आर्थिक - सभी तरह से नुकसान हुआ है। कुछ असर तो हमें सीधे दिख रहे हैं, जैसे लोगों का रोज़गार चला जाना या काम-धन्धा बन्द हो जाना; पर उसके कुछ और भयावह असर धीरे-धीरे सामने आ रहे हैं। हर वर्ग, हर तबका इससे प्रभावित हुआ है। इससे उबरने और निकलने में हमें समय लगेगा और इसके लिए हमें बहुत तरह के गम्भीर प्रयास भी करने होंगे।

प्रेरणा मालवीय

अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन,

भोपाल, म.प्र.

संदर्भ अंक-132 के *सवालीराम* में पढ़ा कि चाँद दिन में कहाँ जाता है, सूरज रात में कहाँ जाता है। यह बात तो हम सभी के मन में प्रश्न के रूप में बचपन से ही होती है। लेकिन वास्तविकता में तो यह ग्रहों का ही खेल होता है। हम सभी जानते हैं कि सूर्य सभी ग्रहों के लिए ऊर्जा का स्रोत है और सभी ग्रह सूर्य के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते रहते हैं। पृथ्वी सूर्य का ग्रह है, और चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है। जैसा कि चित्र में भी बताया गया है कि चन्द्रमा पृथ्वी के साथ-साथ सूर्य की परिक्रमा भी करता है। पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा 365 दिनों में पूर्ण कर ली जाती है तथा पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घण्टों में एक चक्कर लगा लेती है। और इसी में विद्यार्थी के उस सवाल का जवाब निहित है।

मनीषा श्रीवास्तव
शा. प्राथमिक शाला, रातीबड़
भोपाल, म.प्र.

आप सभी को कौसानी से नमस्कार! पिछले कुछ हफ्तों से, मैं *शैक्षणिक संदर्भ* के अंक-131 से कुछ लेख पढ़ रहा हूँ। अरविंद सरदाना के लेख *महाराष्ट्र के सरकारी-अनुदान प्राप्त सेमी-इंग्लिश स्कूलों से क्या सीख सकते हैं?* में मुझे विशेष दिलचस्पी हुई।

हालाँकि, अँग्रेज़ी मेरी मातृभाषा है और मैं इंग्लैंड में पला-बढ़ा हूँ, भारत में अँग्रेज़ी भाषा में शिक्षा के लिए 'पागलपन' मुझे बहुत चिन्ताजनक लगता है। कई सालों तक मैंने महसूस किया है कि भारत के लिए 'यूरोपीय मॉडल' ही आदर्श होगा। भारत की ही तरह, यूरोप में भी बड़ी संख्या में भाषाएँ हैं, पर प्रत्येक देश में शिक्षा मातृभाषा में दी जाती है। तब भी, यूरोपीय विद्यार्थियों को अँग्रेज़ी, दूसरी भाषा के तौर पर, बहुत ऊँचे दर्जे में पढ़ाई जाती है। ताकि जब तक वे स्कूल छोड़ें, तब तक अँग्रेज़ी भाषा में उनके लिखने और बोलने की पकड़ बेहद मज़बूत हो जाए। निश्चित रूप से यह भारत के लिए एक मॉडल प्रदान कर सकता है – हमें अँग्रेज़ी को दूसरी भाषा के तौर पर पढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए। एक ऐसे पेशेवर तरीके से कि बारहवीं कक्षा के बाद, विद्यार्थी अँग्रेज़ी की उत्कृष्ट समझ के साथ उभरें।

मुझे नहीं पता, आप जानते हैं या नहीं कि वेल्स, जो कि यूनाइटेड किंगडम का हिस्सा है, के उन इलाकों में जहाँ वेल्श भाषा बोली जाती है, शिक्षा भी वेल्श में ही दी जाती है। और शिक्षकों को वेल्श भाषा में माहिर होना ही पड़ता है। पूरे वेल्स में, वेल्श भाषा पाठ्यचर्या का एक अनिवार्य विषय है।

मैंने *हिन्दुस्तान* अखबार के 25 अगस्त, 2021 के उत्तराखण्ड संस्करण में एक खबर पढ़ी और यह आप सभी को भी रुचिकर लगेगी कि खताड़ी, रामनगर, ज़िला नैनीताल के अटल उत्कृष्ट स्कूल की छात्राएँ अँग्रेज़ी भाषा थोपे जाने का विरोध कर रही थीं।

डेविड हॉप्किंस
अलमोड़ा, उत्तराखण्ड

हर बाउंड वॉल्यूम में सिमटे हैं सात रंग

भौतिकी, रसायन, गणित,
वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान,
इतिहास, भूगोल, राजनीति शास्त्र,
बच्चों-शिक्षकों के साथ अनुभव,
पुस्तक समीक्षा, पुस्तक अंश,
इंटरव्यू, आत्मकथा, जीवनी,
कहानी, भाषा शिक्षण,
शिक्षा शास्त्र

संदर्भ में अब तक प्रकाशित सामग्री 22 बाउंड वॉल्यूम में उपलब्ध है।
हरेक बाउंड वॉल्यूम का मूल्य 300 रुपए।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क कीजिए

पिटारा, एकलव्य

जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी,
भोपाल, म.प्र. पिन 462026
फोन: 0755 - 2977770, 2977771
ई-मेल: pitara@eklavya.in, www.pitarakart.in

क्यों करें प्रयोग?

विज्ञान की कक्षा में गतिविधियों के पक्ष में कुछ और कारण

उमा सुधीर

हार्डी (हृदय कांत दीवान) ने *संदर्भ* (अंक-4, पृ. 15-17) में 'क्यों करें प्रयोग' शीर्षक से एक लेख लिखा था। हमने उस लेख का उपयोग कई कार्यशालाओं में किया है और सहभागियों से उस लेख में वर्णित प्रयोग करवाया भी है। उस लेख और उस प्रयोग पर काफी जीवन्त चर्चाएँ भी हुई हैं। सात्यकी भट्टाचार्य और अभिषेक धर ने 'क्यों चढ़ा पानी ऊपर' (*संदर्भ* अंक-5, पृ. 38-44) में उस प्रयोग को लेकर काफी खोजबीन की है – प्रयोग यह है कि एक जलती हुई मोमबत्ती को पानी भरी एक तश्तरी में रखकर बीकर से ढँकने पर क्या होता है।

लेकिन मुझे इस प्रयोग के बारे में बात नहीं करनी है, वर्तमान लेख में मैं हार्डी द्वारा अपने लेख में उठाए गए मुद्दों पर चर्चा को आगे बढ़ाते हुए विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में

गतिविधियों के तौर पर दिए प्रयोगों की प्रकृति की छानबीन करना चाहूँगी। मैं इस बारे में चर्चा करूँगी कि हमें विज्ञान की कक्षा में गतिविधियों की क्या ज़रूरत है (और क्यों शिक्षक इसके लिए राज़ी नहीं होते) और यदि हम विज्ञान शिक्षा को संजीदगी से लेते हैं तो हमें किस तरह की गतिविधियों की ज़रूरत है।

फिलहाल पाठ्यपुस्तकों में किस तरह के प्रयोग पाए जाते हैं? काफी समय से, जैसा कि हार्डी ने कहा है, हर प्रयोग के बाद विस्तार में बताया जाता है कि अपेक्षित अवलोकन क्या होंगे और उनसे क्या निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए। लगता है कि ऐसा दो कारणों से किया जाता है – पहला कि पाठ्यपुस्तकों के लेखकों की अपेक्षा नहीं होती कि इन प्रयोगों को वास्तव में किया जाएगा। इसलिए यदि आगे की चर्चा के लिए अवलोकन ज़रूरी हैं, तो हर हाल में ये उपलब्ध कराने होंगे। दूसरा, खुदा न ख्वास्ता, यदि कोई शिक्षक वास्तव में ये प्रयोग करवाने का हौसला दिखाए, तो लेखकों को उन पर और छात्रों पर यह विश्वास नहीं होता कि वे 'सही' अवलोकन करके अपेक्षित निष्कर्ष तक पहुँच पाएँगे (इस पर आगे और बात करेंगे)।

यह दूसरा कारण शायद सम्भव है – वैज्ञानिक सिद्धान्तों का तकाज़ा होता है कि हम मात्र उन अवलोकनों पर ध्यान केन्द्रित करें जो अन्वेषणाधीन

चित्र-1: गिलास-मोमबत्ती का प्रयोग: *एक शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान कुछ शिक्षकों का तर्क था कि यदि मोमबत्ती बुझने के बाद गिलास की हवा गरम होकर फैलने से पानी ऊपर चढ़ता है, तो हम गिलास को बाहर से गरम करके देखते हैं। क्या गिलास में पानी और ऊपर चढ़ता है? कुछ शिक्षकों ने ऐसा करके भी देखा। आप भी करके देखिए और अपने अवलोकन संदर्भ टीम को भेजिए।*

परिघटना के लिए प्रासंगिक हैं और कोई निष्पक्ष अवलोकनकर्ता शायद शिक्षक (या पाठ्यपुस्तक लेखक) के लिए इतने और ऐसे तथ्य उपलब्ध करा दे कि उन्हें सन्तोषजनक ढंग से सम्भालना मुश्किल हो। एक वरिष्ठ शिक्षाविद ने मुझे बताया था कि मोमबत्ती का उपरोक्त प्रयोग बच्चों के एक समूह में करने पर 100 से ज़्यादा अलग-अलग अवलोकन आए थे।

पाठ्यपुस्तकों में गतिविधियों का अपर्याप्त विवरण

यदि कोई अनुभवहीन व्यक्ति पाठ्यपुस्तक में दी गई गतिविधियाँ करवाने की कोशिश करे, तो वे प्राय: मुश्किल में फँस जाएँगे क्योंकि निर्देश काफी चलताऊ होते हैं। इसके अलावा, इबारत के साथ दिए गए चित्र (यदि हों तो) अक्सर गलत होते हैं क्योंकि जिस चित्रकार से ये चित्र बनाने को कहा जाता है, उसे बिलकुल भी पता नहीं होता कि चित्र में क्या दर्शाना है और उसे उपकरणों का भी अता-पता नहीं होता। मुझे एक पाठ्यपुस्तक देखकर काफी अचम्भा हुआ था – उसमें एक चित्र में हाथ में एक परख नली दिखाना थी लेकिन जो चीज़ हाथ में पकड़ी दर्शाई गई थी, वह 500 मि.ली. के नपनाघट के बराबर थी।

इन निर्देशों के संक्षिप्त होने का कारण यह हो सकता है कि इस बात की कोई गम्भीर अपेक्षा नहीं होती कि कोई इन प्रयोगों को करने की कोशिश करेगा/करेगी। यह भी हो सकता है कि पुस्तक के लेखकों ने इस सामग्री को किसी ऐसे व्यक्ति के साथ आज़माया ही न हो जो इस सामग्री का उपयोग करने वाले हैं। पाठ्यपुस्तकें अक्सर 'विशेषज्ञों' द्वारा लिखी जाती हैं जिन्हें शिक्षकों और जिन स्कूलों में वे शिक्षक काम करते हैं, वहाँ की परिस्थिति का कोई अनुभव नहीं होता और यह भी अन्दाज़ नहीं होता कि वहाँ कोई सन्दर्भ पुस्तकें नहीं होंगी जिनकी मदद से शिक्षक किसी बात की जाँच कर सकें। दरअसल, शिक्षक के पास ले-देकर एक पाठ्यपुस्तक और बहुत हुआ तो निर्देशिका होती है। आजकल हालत थोड़ी बेहतर हुई है क्योंकि शिक्षक अपने स्मार्ट फोन की मदद से ऑनलाइन तलाश कर सकते हैं। लेकिन विभिन्न वेबसाइट्स पर सामग्री की गुणवत्ता को परखने का कोई तरीका न होने की स्थिति में वे भाग्यशाली होंगे यदि उन्हें हर बार कोई अच्छा स्रोत मिल जाए।

लेकिन चन्द प्रासंगिक कारकों/परिवर्तियों पर ध्यान केन्द्रित करना एक ज़रूरी कुशलता है – अधिकांश सिद्धान्त आदर्शीकरण की प्रक्रिया से प्राप्त होते हैं और इस प्रक्रिया को सीखना-समझना होता है।

अलबत्ता, मैं उस प्रक्रिया के बारे में बात नहीं करने जा रही हूँ जिसके ज़रिए नियम व सिद्धान्त हासिल किए जाते हैं। मेरी चिन्ता का कारण तो यह है कि अधिकांश शिक्षक कक्षा में किसी भी तरह की गतिविधि करवाने के लिए तैयार नहीं होते, उन गतिविधियों की तो बात ही जाने दें जिनके बारे में मेरा मत है कि वे छात्रों के लिए विज्ञान की प्रकृति को समझने के लिए ज़रूरी हैं। और इस तैयारीहीनता का प्रमुख कारण यह है कि अधिकांश अभिजात्य स्कूलों तक में प्रैक्टिकल्स 'रिकॉर्ड बुक' से अधिक कुछ नहीं होते। और अधिकांश अन्य निजी स्कूलों और सरकारी

चित्र-2: *विज्ञान के प्रयोगों को करने के लिए कुछ बुनियादी कौशल और दक्षताओं की ज़रूरत होती है जिसे शिक्षक आसानी-से हासिल कर लेते हैं। इसलिए विज्ञान के प्रयोग करवाना किसी भी शिक्षक के लिए सहज है।*

स्कूलों में तो ठीक-ठाक प्रयोगशाला अथवा न्यूनतम उपकरण भी नहीं होते। साधारण कॉलेजों में तो आप अपेक्षित प्रयोग किए बगैर भी स्नातक उपाधि प्राप्त कर सकते हैं। और जो छात्र 'अच्छे' कॉलेजों में जाते हैं जहाँ सारे प्रयोग गम्भीरता से किए जाते हैं, वे अक्सर शिक्षक नहीं बनते।

कार्यशालाओं में मेरा सम्पर्क जिन शिक्षकों से हुआ है, उन्होंने स्कूली शिक्षा के दौरान एक भी प्रयोग नहीं किया था, और कई शिक्षकों ने तो रस्मी प्रायोगिक परीक्षा (जो अपने-आप में एक साइड बिज़नेस है) के अलावा प्रयोगशाला में कदम रखे बिना ही सफलतापूर्वक स्नातक उपाधि पूरी कर ली थी। लिहाज़ा, उन्हें पता नहीं होता कि प्रयोग कैसे किए जाएँ, हालाँकि पाठ्यपुस्तक में उसका विवरण दिया गया होता है (वैसे बॉक्स देखिए कि कई बार प्रयोगों का विवरण भी ठीक तरह से नहीं दिया जाता है)। इस मामले में मेरे अनुभव हास्यास्पद से लेकर त्रासद तक रहे हैं। यह इस बात पर निर्भर है कि उस समय मैं कितनी मायूस या खुश हूँ।

उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति (इंजीनियरिंग स्नातक) को 30, 50 और 70 से.मी. लम्बाइयों के दोलकों का दोलन काल निकालने को कहा गया। अब यदि मैं उन सारी त्रुटियों को अनदेखा भी कर दूँ जो उसने दोलक की लम्बाई निकालने में की

थीं, तो भी मुझे उसके तरीके में विचित्र खामियाँ नज़र आईं - जिनमें सबसे प्रमुख थी, दोलन शुरू करने से लेकर दोलन पूरी तरह रुक जाने तक का समय नापना। मैं सोचती रही कि उसे इतना समय क्यों लग रहा है और देखने गई तो समझ में आया। इसकी वजह से उसका यह क्रान्तिकारी निष्कर्ष तो कभी उभर ही नहीं पाया कि दोलन काल शुरुआती विस्थापन पर निर्भर करता है क्योंकि खोजबीन की यह धारा वहाँ रोक दी गई थी।

ऐसे शिक्षक, सबसे बढ़िया इच्छाशक्ति के बावजूद (अधिकांश शिक्षक अपने छात्रों के लिए बढ़िया-से-बढ़िया काम करना चाहते हैं) इस स्थिति में नहीं होते कि अपनी कक्षा में गतिविधि आधारित सत्र का संचालन कर सकें। पहले कभी प्रयोग न करने की वजह से वे खुद चीज़ें आज़माने को लेकर थोड़े भयभीत होते हैं, कक्षा में करवाने की बात तो दूर की है।

शिक्षकों के लिए चिन्ता का एक और स्रोत यह होता है कि यदि उन्होंने बच्चों से गतिविधि करवाई या किसी गतिविधि का प्रदर्शन भी कर दिया, तो बच्चे इतने सवाल पूछने लगेंगे, जिनके जवाब देने में विशेषज्ञों के भी पसीने छूट जाते हैं। चूँकि अधिकांश शिक्षकों ने दस-बीस प्रश्नों का रट्टा मारकर उपाधियाँ प्राप्त की हैं, इसलिए उनके पास ऐसे सवालों का सामना करने के लिए ज़रूरी विषय की समझ नहीं होती।

हमने जो कुछेक कार्यशालाएँ आयोजित की हैं, उनमें हमें शिक्षकों के ज्ञान व अनुभव में दो प्रमुख खामियों का सामना करना पड़ा है – उनके पास विषयवस्तु (सिद्धान्त) का उपयुक्त ज्ञान नहीं होता, और उन्होंने शायद ही कभी कोई प्रयोग किया है। लिहाज़ा, शिक्षण विधि में एक बहुत अलग तरीके की बात करते हुए, शिक्षकों को यह समझाना भी मुश्किल होता है कि छात्रों से प्रयोग करवाना कितना ज़रूरी है। अक्सर उनकी पहली आपत्ति यह होती है कि इसमें समय बहुत लगेगा और वे सिलेबस पूरा नहीं कर पाएँगे। लेकिन सत्र के अन्त में जब हम पूछते हैं कि क्या उन्हें प्रयोग करने में मज़ा आया और क्या उन्होंने कुछ नया सीखा, तो वे सहमत होते हैं। लेकिन थोड़ी झिझक भी होती है क्योंकि अब भी प्रमुख चिन्ता सिलेबस पूरा करने की होती है, सीखने-सिखाने की गुणवत्ता जाए भाड़ में।

अलबत्ता, हमें कई ऐसे शिक्षक मिले हैं जो इस बात को लेकर बहुत उत्साहित थे कि उन्हें छात्रों को विज्ञान की कक्षा में प्रेरित करने का एक साधन मिल गया है। ये शिक्षक आगे चलकर अपनी कक्षा को गतिविधि-उन्मुखी बनाने के लिए खूब मेहनत करते हैं और ऐसा करते हुए मज़ा भी लेते हैं। लेकिन यह एक

लम्बी प्रक्रिया है और इसके लिए कई कार्यशालाओं और कक्षा में मदद की भी दरकार होती है। यह समय, हुनर और संसाधनों का एक दीर्घावधि निवेश है जिसे प्रशासनिक मशीनरी समझ नहीं पाती, क्योंकि वह तो बच्चों में सीखने की किसी भी कमी के सन्दर्भ में थेगले लगाकर काम चलाना चाहती है।

इस लेख के मुख्य विषय से थोड़ा हटकर, अपर्याप्तता के इस एहसास के साथ जुड़ी होती है सर्वज्ञाता 'गुरु' की एक छवि जिसे शिक्षक को जीना पड़ता है। अपनी कार्यशालाओं में हम शिक्षकों से कहते रहते हैं कि छात्रों से कहना गलत नहीं है कि आप सारे उत्तर नहीं जानते और सुझा सकते हैं कि आप दोनों (छात्र और शिक्षक) मिलकर जवाब खोजने की कोशिश करेंगे। इन सत्रों के दौरान मैंने अक्सर ऐसे कथन व्यक्त किए हैं –

- मुझे पता नहीं, लेकिन मैं पता करके बता सकती हूँ।
- यह सवाल मेरे ज़ेहन में कभी आया ही नहीं, इसलिए मुझे इसके बारे में सोचना होगा।
- वाह, क्या बढ़िया सवाल है, चलिए बाकी सत्र में इसकी आगे पड़ताल करते हैं। (यह आखरी वाला वक्तव्य बदकिस्मती से उतना नहीं कहा जाता, जितने कि बाकी दो)

मैंने इस बारे में सोचा है कि क्या यह सुनकर शिक्षकों को ऐसा नहीं लगता होगा कि उनका पाला एक नाकारा अध्यापक से पड़ा है। बहरहाल, मैं उम्मीद करती हूँ कि उनमें से कुछ शिक्षक तो ऐसी बातें अपने छात्रों से कहने लगे होंगे।

प्रयोग के हुनर से विज्ञान की समझ

अच्छी तरह पढ़ाने के लिए जिस अवधारणात्मक समझ की ज़रूरत होती है, उसे छोड़ दें तो भी विभिन्न प्रयोग करने का हुनर कई सारे मानक प्रयोगों को मार्गदर्शन के अन्तर्गत कई बार करने से ही हासिल होता है। एक ही प्रयोग को बार-बार दोहराना, विभिन्न उपकरणों का उपयोग करना सीखना, और उपकरणों में त्रुटि की गुंजाइश को सराहना उन्हें यह आत्मसात करने में मदद देगा कि किस तरह की सावधानियों की ज़रूरत होती है और अलग-अलग प्रयोग कितने दृढ़ होते हैं और हर मामले में आपको कितना सतर्क रहना होगा। मैं अपनी पीएच. डी. के दौरान विभिन्न कार्बनिक पदार्थों की मिलीग्राम मात्रा का संश्लेषण किया करती थी। उस अनुभव से निकलकर मैंने *एकलव्य* से जुड़े एक वरिष्ठ प्राध्यापक से 10 प्रतिशत कॉस्टिक सोडा और 1 प्रतिशत कॉपर सल्फेट का घोल (जिनका उपयोग खाद्य पदार्थों में प्रोटीन परीक्षण के लिए होता है) बनाने के बारे में पूछा। चूँकि हमारे पास तोलने का कोई साधन नहीं था,

तो उन्होंने बताया कि दोनों घोल के 100-100 मि.ली. बनाने के लिए सोडियम हायड्रॉक्साइड चम्मच भर लेने से काम चल जाएगा और 1 प्रतिशत घोल के लिए एक चुटकी भर कॉपर सल्फेट लगेगा। कई कार्यशालाओं में भाग लेने के बाद ही मुझमें ज़रूरी सान्द्रता का घोल बनाने का आत्मविश्वास पैदा हुआ और यह समझ में आया कि कब मोटा-मोटा अन्दाज़ काफी होता है जबकि कुछ परिस्थितियों में ज़्यादा ध्यान रखना पड़ता है और तराज़ू का उपयोग करना होता है।

निगरानी के तहत समूहों में प्रयोग करना और साथ में प्रत्येक समूह में अवलोकनों को लेकर खुली चर्चा दो कारणों से ज़रूरी है। उनकी बात मैं कुछ समय में करूँगी। हम शिक्षकों के साथ इसी तरह से काम करते हैं और शिक्षण विधि को लेकर अघोषित सुझाव यह होता है कि वे कक्षा में अपने छात्रों के साथ ऐसा ही करेंगे। अब इस बात पर आते हैं कि कई समूहों द्वारा किए गए एक ही प्रयोग के अवलोकनों को आपस में साझा करना क्यों ज़रूरी है। ज़ाहिर है, जब हम अलग-अलग समूहों के अवलोकनों को साथ रखेंगे तो विविधता होगी। और इन विविधताओं को सम्बोधित करना, नीचे बताए कारणों के चलते महत्वपूर्ण है।

चित्र-3: *ध्वनि के परावर्तन के नियम की पड़ताल करते हुए कक्षा आठ के बच्चे। प्रयोग का सेटअप और टोली में कौन क्या करेगा, यह सब बच्चों ने ही तय किया था। किनवट (ज़िला नांदेड़, महाराष्ट्र) की एक आश्रमशाला में विज्ञान कक्षा का दृश्य।*

पहला, जब भिन्नताएँ दिखती हैं, तो यह प्रयोग पद्धति की ज़्यादा गहराई में पड़ताल करने का और यह समझने का मौका होता है कि प्रयोग को कितनी सावधानी से किया गया था। प्रयोग शुरू करने से पहले जो निर्देश दिए जाते हैं, वे कई बार समूहों द्वारा ठीक से समझे नहीं जाते क्योंकि प्रयोग करने का अत्यन्त उत्साह होता है। एक प्रयोग कर लेने के बाद, खामियों पर चर्चा करने से सावधानियों के बारे में जितनी सतर्कता आती है, वह पद्धति और सावधानियों को बार-बार दोहराकर भी नहीं आती। इसके आधार पर प्रयोग को ज़्यादा सावधानी से दोहराया जाना चाहिए। आम तौर पर इसके बाद अवलोकनों में तालमेल बेहतर हो जाता है लेकिन विविधता तो फिर भी रहती है।

और इससे हम दूसरे, और ज़्यादा महत्वपूर्ण कारण पर पहुँचते हैं कि क्यों पूरी कक्षा को हरेक समूह द्वारा प्राप्त अवलोकनों को साझा करना चाहिए। कारण यह है कि कोई भी प्रयोग कितनी ही निष्ठा और सावधानी से किया जाए, विविधता देता ही है - मानवीय त्रुटि की वजह से, उपकरणों की सटीकता की वजह से या बेतरतीब विविधता भी हो सकती है। इस सब की चर्चा करने से न सिर्फ समूह को समझ में आएगा कि क्यों उनके अवलोकन अपेक्षित अवलोकनों से मेल नहीं खाते बल्कि इससे एक और बात रेखांकित होगी, जिसके बारे में पाठ्यपुस्तकें बात नहीं करतीं - कि विज्ञान अस्थायी ज्ञान है, एक रेंज होती है जिसके भीतर कोई सिद्धान्त सटीक पूर्वानुमान देता है, और इस ज्ञान की सीमाएँ पता करने का काम लगातार जारी रहता है। यह पहलू एक स्वतंत्र लेख का हकदार है और मैं फिलहाल इसमें और विस्तार में नहीं जाऊँगी।

हुनर और अभ्यास

जब मैं यह याद करती हूँ कि मेरे शिक्षकों ने मुझे प्रयोगशाला की छोटी-छोटी बातों का प्रशिक्षण देने में कितनी मेहनत की थी - हर छोटी-से-छोटी चीज़ सिखाई थी - कि ब्यूरेट के स्टॉप कॉक को कैसे चलाना है, ग्राफ में स्मूथ (smooth) वक्र कैसे खींचते हैं। उन्होंने मेरे द्वारा बनाई गई हर बेढंगी स्लाइड को खारिज कर दिया था क्योंकि स्लाइड जितनी मोटाई की होनी चाहिए, उससे तीन गुना मोटी थी। तो मुझे आजकल के छात्रों की कहानियाँ सुनकर हैरत होती है। मुझे याद है कि एक स्नातक छात्र ने मुझे बताया था कि उसके शिक्षक ने उसे कहा था कि उन्हें अनुमापन के तीन पाठ्यांक बताने हैं। पहला वाला पाठ्यांक थोड़ा अलग हो सकता है लेकिन अगले दो सही होने चाहिए और एकदम समान (कॉनकरेंट) होने चाहिए।

मैं इतनी हक्का-बक्का थी कि

समझ नहीं आया कि अनुमापन के इस संस्करण को कहाँ से उधेड़ना शुरू करूँ। मैं कल्पना कर सकती हूँ कि कोई कुशल पेशेवर सारे अज्ञात अनुमापनों में तीन पाठ्यांकों में सारे सही मान निकाल लेगी (मैं स्कूलों और कॉलेजों में किए जाने वाले अनुमापनों को अज्ञात अनुमापन नहीं कहूँगी क्योंकि उनमें सान्द्रताओं को इस तरह समायोजित किया जाता है कि प्रायोगिक रूप से आप जो आयतन खर्च करें, वह मानक घोल के लगभग बराबर रहे लेकिन जब हम किसी अज्ञात राशि का मान ज्ञात करने की कोशिश करते हैं तो ऐसा नहीं होता)। यदि उस व्यक्ति को हर बार सुसंगत पाठ्यांक मिलते हैं, तो इसका मतलब है कि पहला अनुमापन ही उसने शुरू से बूँद-बूँद करके किया है जिससे सही मान प्राप्त हुआ। फिर दूसरी बार भी वही पाठ्यांक मिलने से इसकी पुष्टि हो जाएगी। तीन पाठ्यांकों से मान को ज्ञात करने का मतलब है कि पहला पाठ्यांक थोड़ा अधिक होगा क्योंकि पहली बार में अन्तिम बिन्दु शायद थोड़ी देर में देखा गया होगा। लेकिन जब इसे दोहराया जाएगा तो आपको मोटे तौर पर अन्दाज़ होगा कि अन्तिम बिन्दु क्या है, इसलिए आप इस मान से 1-2 मि.ली. पहले ही धीरे-धीरे अनुमापन करने लगेंगे ताकि एकदम सही अन्तिम बिन्दु पता कर सकें। तीसरे अनुमापन में वही पाठ्यांक मिलने पर इसकी पुष्टि हो जाएगी।

यदि कोई सिर्फ दो पाठ्यांक रिपोर्ट कर रहा है और दोनों एक-से हैं, तो मैं मानकर चलूँगी कि वह व्यक्ति पहले अनुमापन को अति सावधानीपूर्वक करके अपना समय बरबाद कर रहा है ताकि एकदम सही मान मिल जाए और फिर एक और अनुमापन करके उसकी पुष्टि कर ले। चूँकि समय भी एक संसाधन है, उसे बरबाद नहीं करना चाहिए। हम एक कुशल रसायनज्ञ में यह गुण देखना नहीं चाहते।

लेकिन किसी नौसिखिए, जो उपकरण सम्भालना सीख ही रहा है, से यह अपेक्षा ठीक नहीं लगती कि वह विशेषज्ञ की तरह पहला ठीक-ठाक पाठ्यांक प्राप्त करके फिर दो एक-से पाठ्यांक रिपोर्ट करे। मेरी अपेक्षा तो होगी कि चार-पाँच प्रयासों के बाद जाकर दो एक-से पाठ्यांक मिलेंगे। और यह स्थिति काफी अनुभव के बाद बदलेगी जब वह व्यक्ति दस्तक दे रहे अन्तिम बिन्दु को भाँप पाएगा।

सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए पिपेट की ऐसी डिज़ाइन विकसित हुई जिसमें आपको मुँह से खींचकर घोल नहीं भरना पड़ता। इसका मतलब है कि अनुमापन करते समय मैंने जो कई घूँट सोडियम हायड्रॉक्साइड या हायड्रोक्लोरिक

अम्ल निगला था, आज वह रासायनिक प्रयोगों का अपरिहार्य हिस्सा नहीं है।

प्रासंगिक गतिविधियों की ज़रूरत

बहरहाल, उस बात पर लौटती हूँ जो मेरा लक्ष्य है। यदि शिक्षक कक्षा में गतिविधियाँ करवाना चाहें तो उनको अनुभव की आवश्यकता है, जो फिलहाल उनके पास नहीं है। लेकिन खुद गतिविधियों का क्या? क्या वे विषय के लिए प्रासंगिक होती हैं? या फिर वे सिर्फ इसलिए शामिल कर दी जाती हैं ताकि पाठ्यपुस्तक गतिविधि-आधारित होने का स्वांग कर सके? क्या ये गतिविधियाँ सही होती हैं या गलत धारणाओं पर टिकी होती हैं? हार्डी ने जिस प्रयोग की चर्चा की थी, वह काफी आलोचना के चलते पाठ्यपुस्तकों में से बाहर हो चुका है और मैं यह दावा नहीं करूँगी कि पाठ्यपुस्तकों में आज शामिल सारी गतिविधियाँ प्रासंगिक हैं। लेकिन मैं एक-एक उदाहरण ऐसी गतिविधियों का देना चाहूँगी जो या तो सजावटी हैं जिन्हें वास्तव में करना नहीं है और दूसरी ऐसी जो सरासर गलत हैं।

पहला उदाहरण एन.सी.ई.आर.टी. की कक्षा-9 की विज्ञान की वर्तमान पाठ्यपुस्तक (प्रथम प्रकाशन 2006) में देखा जा सकता है। ध्वनि के अध्याय में एक गतिविधि कथित रूप से दर्शाती है कि ध्वनि निर्वात में गमन नहीं करती। मैं यह दावा तो नहीं कर रही हूँ कि जिस रूप में यह गतिविधि वर्णित है, उस रूप में काम नहीं करेगी। दरअसल, कई वीडियो आसानी-से उपलब्ध हैं जिनमें यही प्रयोग दर्शाया गया है। मेरी दिक्कत है कि यह अपेक्षा करना हास्यास्पद है कि किसी स्कूल में निर्वात पम्प उपलब्ध होगा। यथार्थ के प्रति एक रियायत यह की गई है कि इस गतिविधि को क्रमसंख्या नहीं दी गई है। लेकिन पाठ की इबारत से ऐसा लगता है कि छात्र स्वतंत्र रूप से यह प्रयोग कर सकते हैं।

और एक गलत गतिविधि का उदाहरण हमें महाराष्ट्र की कक्षा-7 की पाठ्यपुस्तक के 'प्राकृतिक संसाधनों के गुणधर्म' नामक अध्याय में देखने को मिलता है। इसमें एक छड़ी के दो सिरों पर बँधे गुब्बारों की तुलना का प्रयोग दिया गया है। एक गुब्बारे में हवा भरी है जबकि दूसरा खाली है। इस प्रयोग से यह दर्शाने की अपेक्षा की जाती है कि हवा में 'संहति और वज़न' होते हैं। (जी हाँ, पाठ्यपुस्तक में ये शब्द मोटे हर्फों में छपे हैं)। यदि इसी तर्क को आगे बढ़ाकर, हम यही प्रयोग एक गुब्बारे में हवा की बजाय हायड्रोजन भरकर करें तो हम ऋणात्मक संहति और वज़न वाले पदार्थ की खोज कर लेंगे। यह प्रयोग भी किसी समय मिडिल स्कूल की अधिकांश पाठ्यपुस्तकों की शोभा हुआ करता था, लेकिन अब कमोबेश चलन से बाहर हो गया है, और इस बात का कारण भी स्पष्ट

चित्र-4: *कक्षा सातवीं की किताब में दिया गया गुब्बारे वाला चित्र जो हवा में संहति होने की बात को समझाने की चेष्टा करता है।*

रूप से समझा नहीं गया है कि क्यों हवा से भरा गुब्बारा थोड़ा भारी होता है; और तो और, यह अन्तर इतना कम है कि सन्तुलन बिन्दु पर टिकी कोई छड़ी शायद ही इसे भाँप सकेगी।

निष्कर्ष दिए जाएँ या नहीं?

इस सवाल पर आते हैं कि क्या प्रयोग के विवरण में अपेक्षित अवलोकन और निष्कर्ष शामिल किए जाने चाहिए। मैं पूरी तरह इसके खिलाफ नहीं हूँ, और न ही मुझे लगता है कि यह जानने से प्रयोग करने का उत्साह कम हो जाएगा कि उसमें क्या अपेक्षा है। मैं जिन शिक्षकों को जानती हूँ, वे सब हायड्रोजन के गुणधर्मों को बयान कर सकते हैं। लेकिन इसके बावजूद जब हायड्रोजन को 'पॉप' की ध्वनि के साथ जलाने की बात आती है तो सब जोश में आ जाते हैं। हमें करना यह होगा कि गतिविधियों को शिक्षक व छात्र, दोनों के लिए इतनी दिलचस्प बनाएँ कि उनमें कौतूहल पैदा हो जाए। और मुझे उन प्रयोगों को दोहराने के फायदे भी दिखते हैं जिनके परिणाम सदियों से पता हैं। गुरुत्वीय त्वरण (g) का मान हमें पता ही है, लेकिन जब हम दोलक की मदद से इसका मान पता करने की कोशिश करते हैं तो हमें मापन के अपने हुनर को तराशने का मौका मिलता है। प्रैक्टिकल पाठ्यक्रम में शामिल कई अन्य प्रयोग हमें कई ज़रूरी हुनर सिखाते हैं जिनका उपयोग हम बाद में नए अन्वेषण के लिए कर सकते हैं। बहरहाल, मैं कई लोगों की इस बात से सहमत हूँ कि पाठ्यपुस्तक में हर गतिविधि के अपेक्षित अवलोकन/निष्कर्ष प्रदान करना, सीखने की प्रक्रिया में इन गतिविधियों की भूमिका के बारे में गलत सन्देश दे सकता है और जिज्ञासा को मार भी सकता है। इसका एक समाधान यह हो सकता है कि शिक्षक एक गहन उन्मुखीकरण से गुज़रें और यह जान लें कि सारी गतिविधियाँ कैसे करनी हैं और उन्हें सम्भावित अवलोकन भी पता हों, ताकि वे बच्चों का मार्गदर्शन कर

सकें और इस जानकारी को पाठ्यपुस्तक में शामिल न करना पड़े। मैं सिर्फ दो पाठ्यपुस्तकों के बारे में जानती हूँ जिनमें यह तरीका अपनाया गया है। अधिकांश पाठ्यपुस्तकें सब कुछ बता देने और रहस्य से बचने का 'सुरक्षित' तरीका अपनाती हैं।

गतिविधियों का परास

प्रायोगिक कौशल सीखना जबकि उनकी ज़रूरत कभी न पड़े, वैसा ही है जैसे बच्चों को पढ़ना सिखाने के लिए वर्णमाला और शब्द सिखाए जाएँ लेकिन मात्राएँ न सिखाई जाएँ। मेरा मत है कि विज्ञान कक्षा में हमें चार तरह की गतिविधियाँ करवानी चाहिए।

1. ऐसे प्रयोग जिनमें छात्रों को जाने-माने प्रयोग दोहराने का मौका मिले और उन्हें अपेक्षित निष्कर्ष पता हों ताकि वे हुनर और प्रयोगशाला तकनीकें सीख सकें। यहाँ छात्रों को यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि वे कोई मौलिक अन्वेषण नहीं करने जा रहे हैं बल्कि इन प्रायोगिक परिणामों को दोहराना व उनकी पुष्टि करना न सिर्फ वर्तमान वैज्ञानिक ज्ञान की मज़बूती को सुदृढ़ करता है बल्कि अपने प्रायोगिक कौशल को तराशने का और यह सीखने का मौका भी देता है कि व्यवस्थित रूप से अन्वेषण कैसे करते हैं। ऐसे 'सत्यापन' प्रयोग कुछ ऐतिहासिक प्रयोग भी हो सकते हैं जिन्होंने हमारे ज्ञान में नाटकीय ढंग से वृद्धि की है।

2. ऐसे प्रयोग जिनमें छात्रों को अपने हुनर को थोड़ा टटोलने का मौका मिले। जैसे, दिए गए घोलों को लाल व नीले लिटमस की मदद से अम्लीय, क्षारीय व उदासीन में वर्गीकृत करने के प्रयोग के बाद, वे कुछ ज्ञात अम्लीय और क्षारीय घोलों के साथ जाँच-पड़ताल करके पता कर सकते हैं कि कौन-से फूल अच्छे अम्ल-क्षार सूचक हो सकते हैं। वे यह भी पता कर सकते हैं कि और कौन-सी चीज़ें सूचक बन सकती हैं। मुझे याद है जब किसी ने बताया था कि पेम्फलेट छापने में इस्तेमाल किया जाने वाला पीला कागज़ भी अम्ल-क्षार का सूचक हो सकता है। हमें बताया जाता है कि जामुन और लाल पत्तागोभी भी pH के अनुसार रंग बदलते हैं। इनके अलावा गन्ध-आधारित सूचक भी होते हैं। पता नहीं और किन-किन चीज़ों को सूचक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

3. कुछ जाँच-पड़ताल निर्देशित खोज के रूप में भी हो सकती हैं जहाँ छात्र मिलकर यह सोच सकते हैं कि उनके द्वारा अध्ययन के लिए चुनी गई किसी परिघटना को कौन-से कारक प्रभावित करते हैं। शिक्षक इनमें वे कारक जोड़ सकते हैं जो छूट गए हों ताकि परिघटना के अध्ययन के लिए ज़रूरी सारे कंट्रोल प्रयोग भी किए जा सकें। उदाहरण के लिए, जंग लगने का अध्ययन कर रहे प्राथमिक कक्षा के

छात्रों का मार्गदर्शन करते शिक्षक ने देखा कि वे जंग लगने में हवा (ऑक्सीजन) की भूमिका से अनभिज्ञ हैं। इसलिए जो प्रयोग उन्होंने शुरू किए थे, वे पूरी समझ बनाने की दृष्टि से नाकाफी थे। ऐसे मामलों में यदि शिक्षक यह विचार जोड़े कि हवा (विभिन्न गैसें) भी कई अभिक्रियाओं में एक अभिकारक है या एक उत्पाद है, तो इससे छात्रों को इस आम वैकल्पिक धारणा से उबरने में मदद मिलेगी कि गैसें 'कुछ नहीं' हैं। यह धारणा इसलिए बनती है क्योंकि अधिकांश गैसें रंगहीन और गन्धहीन होती हैं।

4. और इसके बाद पूरी तरह से खुले अन्वेषण आते हैं जिनमें आपको बिलकुल पता नहीं होता कि जवाब क्या है (शिक्षक भी छात्र के बराबर अनभिज्ञ होते हैं)। दरअसल, आप जवाब खोज रहे होते हैं और खोज का रास्ता भी ढूँढ़ रहे होते हैं, जिसमें वे हुनर काम आते हैं जो आपने सीखे हैं। इस मद में वे सारे प्रोजेक्ट आएँगे जो छात्रों से उभरे हैं जो उनके किसी सवाल का जवाब पाने के लिए किए जाते हैं। ये सवाल उनके अपने हो सकते हैं या उनके समुदाय को परेशान कर रहे सवाल हो सकते हैं। इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण परासिया के छात्रों द्वारा किया गया पानी परीक्षण प्रोजेक्ट था क्योंकि पानी की गुणवत्ता वहाँ एक बड़ी समस्या थी। ऐसे खुले प्रोजेक्ट छात्रों को घटित होते हुए विज्ञान से रूबरू करवाएँगे और उन्हें यह समझने का भी मौका देंगे कि किसी परिकल्पना की जाँच कैसे करते हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि इनसे छात्र किसी भी क्षेत्र में यथास्थिति को स्वीकार करने की बजाय बदलने के बारे में भी सोचेंगे।

एक और ज़रूरी कदम

लेकिन विज्ञान कक्षा में गतिविधियों की भूमिका को लेकर सारे हो-हल्ले के बावजूद, हम इससे वास्तव में क्या अपेक्षा कर सकते हैं? मैंने यह तो सूचीबद्ध कर दिया है कि किस तरह की गतिविधियाँ/प्रयोग किए जाने चाहिए, लेकिन इनसे मैं क्या परिणाम मिलने की उम्मीद करती हूँ? जब पहले-पहल गतिविधि-आधारित विज्ञान कक्षा की वकालत की गई थी, तो अपेक्षा यह थी कि छात्र 'बाल वैज्ञानिक' बनेंगे, जो सावधानीपूर्वक पाठ्यक्रम में शामिल प्रयोग करके अपने अवलोकनों के आधार पर वैज्ञानिक सिद्धान्तों तक पहुँचेंगे। शुरुआत में मैंने कहा था कि शायद पाठ्यपुस्तकों के लेखकों को नहीं लगता कि प्रयोग करने के बाद छात्र सही निष्कर्ष तक पहुँच पाएँगे और इसीलिए वे सब कुछ परोस देते हैं। और वास्तव में जब विभिन्न गतिविधि-आधारित पाठ्यक्रमों (यूके के नफील्ड और यूएस में फिज़िकल साइन्सिज़ करिकुलम स्टडी, बायोलॉजिकल

साइन्सिज़ करिकुलम स्टडी और केम स्टडी) का अध्ययन किया गया तो पता चला कि निश्चित रूप से छात्र वह विज्ञान नहीं सीख रहे हैं, जिसे सीखने की उनसे उम्मीद की जा रही थी।

शुरुआत में तो इसका दोष शिक्षकों को तथा अपर्याप्त प्रशिक्षण की खामियों को दिया गया और सम्भवत: यह सोचा गया कि शिक्षक अपना काम ठीक से नहीं कर रहे हैं। भारत में हम जिन चीज़ों की कल्पना भी नहीं कर सकते, ऐसे संसाधन इन कार्यक्रमों में झोंके गए ताकि ये काम करें। लेकिन ज़्यादा लाभ नहीं हुआ। अन्तत: डेविड आसुबेल ने इस सन्दर्भ में सीखने वाले की भूमिका की ओर इशारा किया – कि हर सीखने वाला कक्षा में इस बाबत कुछ विचार लेकर आता है कि यह दुनिया कैसे काम करती है। ये विचार दैनिक जीवन के तमाम अनुभवों से उभरे होते हैं – खेलकूद, घर में मदद करना, अपने आसपास की दुनिया को टटोलना। और चीज़ों को धकेलने के अनगिनत अनुभवों के बाद एक-दो प्रयोग करके या निहायत अविश्वसनीय दलीलें सुनकर, वे यह तो नहीं मानने वाले हैं कि 'कोई वस्तु एकरूप गति अथवा विराम की अपनी अवस्था में तब तक बनी रहेगी जब तक कि कोई बाहरी बल न लगाया जाए।' वैसे भी इन प्रयोगों और दलीलों का रोज़मर्रा जीवन से कुछ लेना-देना नज़र नहीं आता।

इसी प्रकार से, जब उन्हें बताया जाता है कि पृथ्वी एक गोला है जो अपनी धुरी पर घूमता है और सूरज के चक्कर काटता है, तो उनकी उन तमाम प्रमाणों तक पहुँच नहीं होती जिनके आधार पर लोग इन विचारों तक पहुँचे थे। बच्चे जो अवधारणाएँ लेकर आते हैं, उन्हें वैकल्पिक अवधारणाएँ, मासूम अवधारणाएँ या थोड़ा फूहड़ शैली में गलतफहमियाँ कहा जाता है। और ये काफी सशक्त होती हैं और कई वयस्कों में भी देखी जा सकती हैं (क्योंकि उन्हें कभी चुनौती नहीं दी गई थी और स्कूल में उन्होंने जो विज्ञान सीखा था, उसका उनके दैनिक जीवन में कभी उपयोग नहीं हुआ)।

यदि हम इस स्थिति को गैर-जज़्बाती ढंग से देखें तो मिडिल और हाई स्कूल के छात्रों से यह अपेक्षा थोड़ी ज़्यादा ही लगती है कि वे गैलीलियो, न्यूटन, डाल्टन या डारविन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों तक पहुँच जाएँ। इन सिद्धान्तों की समझ तक पहुँचने का रास्ता कोई सरल रेखा नहीं है – एक-दो प्रयोग किए और सामूहिक 'आहा!' का क्षण आ गया। दरअसल, छात्रों को कई संकेतों की ज़रूरत होती है और साथ ही यह भी कि वे अपने विचार व्यक्त कर पाएँ और उनके सामने ऐसी

स्थितियाँ प्रस्तुत की जाएँ जिनमें उनकी सहज अपेक्षाएँ पूरी नहीं होंगी। यानी, उनका सामना ऐसी कई स्थितियों से करवाना होगा जहाँ उनकी मनचाही मान्यताएँ नाकाम हो जाती हैं और फिर उनके सामने वह सिद्धान्त प्रस्तुत किया जाए जो चीज़ों की सन्तोषप्रद व्याख्या कर देता है।

उदाहरण के लिए, *एकलव्य* की 'बाल वैज्ञानिक' में विद्युत के अध्याय में छात्र एक प्रयोग करते हैं जिसमें वे एक सेल के धन छोर से शुरू करके तार के माध्यम से बल्ब तक और फिर वापिस सेल के ऋण छोर तक विद्युत के पथ का अनुसरण करते हैं – जब बल्ब जल रहा हो। फिर वे यह देखते हैं कि जिन परिपथों में रास्ता टूटा होता है, उनमें बल्ब नहीं जलता। इस आधार पर वे इस सरल और प्रत्यक्ष निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि बल्ब को जलने के लिए विद्युत का रास्ता, यानी विद्युत परिपथ, सेल के एक छोर से दूसरे छोर तक पूर्ण होना चाहिए। यह प्रयोग कई परिपथ संयोजनों के साथ किया जाता है और बल्ब को सावधानीपूर्वक तोड़कर यह भी देखा जाता है कि परिपथ बल्ब के अन्दर भी निरन्तर होता है।

इसके बाद उन्हें निम्नांकित परिपथ दिखाया जाता है और यह बताने को कहा जाता है कि बल्ब जलेगा या नहीं। और मैं जितनी भी कार्यशालाओं में उपस्थित रही हूँ, निरपवाद रूप से हरेक में, छात्रों और

चित्र-5: *दिए गए परिपथ को ध्यान से देखिए और बताइए कि बल्ब जलेगा या नहीं। अनुमान लगाने के बाद आप सेल, तार आदि के साथ वास्तविक परिपथ बनाकर देखिए कि अनुमान सही था या नहीं।*

शिक्षकों, दोनों का विचार था कि बल्ब जलता रहेगा। जब उनसे खुद परिपथ बनाकर जाँच करने को कहा जाता है, तो उनके सामने एक संज्ञानात्मक टकराव पैदा हो जाता है, और उन्हें इस नए अवलोकन की व्याख्या के लिए अपने सिद्धान्त में परिवर्तन करना पड़ता है। इस तरह, कदम-दर-कदम परिपथ में धारा को प्रभावित करने वाले कारकों की समझ बनाई जाती है। और उम्मीद है कि इससे विद्युत की एक बेहतर समझ बनेगी बजाय किसी ऐसे पारम्परिक अध्याय के जिसमें प्रतिरोध, विभवान्तर जैसे शब्दों की बौछार की जाती है। अपने बारे में कहूँ, तो विद्युत के बारे में मेरी जो भी बुनियादी समझ है, वह बाल वैज्ञानिक अध्यायों पर ही टिकी है। इससे पहले मैं इस विषय का सिर-पैर नहीं समझ पाती थी।

चित्र-6: *शिक्षक प्रशिक्षणों में जब सिद्धान्तों और अवधारणाओं पर खुलकर चर्चा हो जाती है तब प्रयोगों के डिज़ाइन पाठ्यपुस्तकों से हटकर, कुछ नए-नए-से दिखने लगते हैं। महाराष्ट्र के आश्रमशाला शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान 'हवा के दबाव' पर चर्चा के बाद साधारण पॉलिथीन, स्ट्रॉ पाइप और धागे की मदद से बने एयर जैक से एक शिक्षक ने दो साइंस किट बॉक्स उठाकर दिखाए।*

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है कि दोनों इन्तहाएँ वैज्ञानिक सिद्धान्तों की गहरी व दीर्घावधि समझ नहीं बना पाएँगी। यदि उन्हें बगैर किसी अनुभव के सिर्फ सिद्धान्त प्रदान किए गए तो ये मात्र ऐसी चीज़ें (और काफी हद तक अर्थहीन चीज़ें) बनकर रह जाएँगे जिन्हें परीक्षाएँ पास करने के लिए और वयस्कों को खुश करने के लिए सीखना है। लेकिन अन्ततः जीवन में जो कुछ चलता है, उससे इनका कोई सरोकार नहीं होगा। किन्तु अपने आप में गतिविधियाँ भी उन्हें सिद्धान्तों तक लेकर नहीं जाएँगी। इसके लिए छोटे-छोटे समूहों में चर्चाएँ करवानी होंगी और फिर खुली बातचीत करनी होगी। और यह सब शिक्षक के मार्गदर्शन में होगा जिसमें वे अपने द्वारा प्रस्तावित हर व्याख्या के निहितार्थों को परखेंगे।

उमा सुधीर: *एकलव्य* के साथ जुड़ी हैं। विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में काम कर रही हैं।
अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी फोटो: माधव केलकर।

आभार: अरविंद सरदाना द्वारा इस लेख के शुरुआती ड्राफ्ट पर दिए गए फीडबैक से इस लेख को बोधगम्य बनाने में बहुत मदद मिली।

शक्तिशाली... सर्वव्यापी... जीवन का आधार, 'फफूँदों' का अनोखा संसार

चेतना खांबेटे

शक्तिशाली... सर्वव्यापी... जीवन का आधार...। यहाँ मैं ईश्वर की नहीं बल्कि फफूँद की बात कर रही हूँ। फफूँद सुनते ही हमें रोटी या ब्रेड पर लगी फफूँद, अचार-मुरब्बे के खुले पड़े मर्तबान में दिखने वाली फफूँद और बारिश के दिनों में तो कपड़ों, जूतों और हर तरफ बिन बुलाए मेहमान के जैसी फैली हुई फफूँद ही दिखने लगती है। कोरोना काल में अपने भयानक पैर पसारने वाली काली और सफेद फंगस भी तो इन्हीं में से हैं। दरअसल, हमें वही दिखता है जो सामने होता है लेकिन हर सिक्के के दूसरे पहलू की तरह फफूँदों का भी एक और पहलू है, जो अक्सर अनदेखा, अनजाना-सा रह जाता है। इस लेख के माध्यम से हम फफूँदों के इस अनोखे संसार के बारे में जानने और समझने की कोशिश करेंगे।

वनस्पतिशास्त्री और अन्य जीव-वैज्ञानिक फफूँद को कवक या फंजाइ भी कहते हैं। इस पूरे लेख में हम कवक या फंजाइ की जगह फफूँद शब्द का ही प्रयोग करेंगे क्योंकि यह शब्द ज़्यादा आसान और जाना-पहचाना लगता है। पारम्परिक वर्गीकरण में फफूँद को पेड़-पौधों के साथ ही पादप समूह में रखा गया था। ये थैलसनुमा होते हैं अर्थात इनमें जड़, तना, पत्तियाँ और साथ ही संवहनीयतंत्र (vascular system) भी नहीं होता। लेकिन सभी फफूँदों में पौधों की कोशिकाओं की तरह सेलूलोज़ की कोशिका-भित्ति न होने और इनके पोषण के खास तरीकों के कारण, इन्हें पौधों के परिवार से बेदखल कर दिया गया, और इनका एक स्वतंत्र समूह बनाया गया। इन्हें अब जीव-जगत के वर्गीकरण में एक अलग जगत या किंगडम के रूप में पढ़ाया जाता है।

फफूँद हमारे जीवमण्डल का एक बड़ा महत्वपूर्ण भाग है। अब तक एक लाख से भी ज़्यादा फफूँदों के बारे में जान लिया गया है लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती है। एक अनुमान के मुताबिक, फफूँदों की लगभग पन्द्रह लाख प्रजातियाँ खोजी जानी बाकी हैं। वास्तव में, विश्व के उन सभी स्थानों में फफूँद पैदा हो सकती है जहाँ भी इन्हें भोजन प्राप्त हो सके। इनकी अधिकाधिक वृद्धि विशेष रूप

से नमी वाली जगहों में, अँधेरे में या मन्द रोशनी में होती है। इनकी बनावट, भोजन का तरीका, प्रजनन, शरीर का संगठन आदि की विशेषताओं और भिन्नताओं को हम आगे जानने की कोशिश करेंगे। यही विविधता इनके रहने की जगहों में भी है। और जनाब, इन्होंने ज़मीन, हवा और पानी के लगभग हर कोने में डेरा डाल रखा है। यहाँ हम इन्हीं बहुरूपिया फफूँदों से जान-पहचान करने वाले हैं।

फफूँद में पोषण

रहन-सहन में विविधताओं की भरमार होने के बावजूद, सभी फफूँदों में कुछ मूल गुणधर्म एक-जैसे ही हैं और तभी तो ये सभी एक ही परिवार के सदस्य हैं। इन मूल गुणधर्मों में भोजन या पोषण का तरीका सबसे प्रमुख है। यह तो हम जानते ही हैं कि सभी जीव अपना भोजन खुद बनाकर या अन्य जीवों से बना-बनाया भोजन लेकर, उसका उपयोग अपने ज़िन्दा रहने के लिए करते हैं। यही प्रक्रिया पोषण कहलाती है। पेड़-पौधों की तरह फफूँद अपना भोजन खुद से नहीं बना सकतीं क्योंकि इनके पास प्रकाश-संश्लेषण के लिए ज़रूरी सामग्री और मशीनें अर्थात क्लोरोफिल और क्लोरोप्लास्ट नहीं हैं और न ही प्राणियों की तरह ये पौधों से अपना भोजन लेकर, उसे पचा सकती हैं। इसीलिए न तो ये स्वपोषी हैं और न ही प्राणी-समभोजी। इस कारण ये अपने पोषण के लिए दूसरों पर निर्भर रहती हैं; अतः परपोषी (Heterotrophic) कहलाती हैं। ये मृतोपजीवी, सहजीवी, परजीवी आदि कई रूपों में पाई जाती हैं। तभी तो फफूँद है ही खास!

फफूँद अपने शरीर के बाहर मौजूद पोषक तत्व को सोखकर अपने लिए भोजन का इन्तज़ाम करती हैं। अधिकतर फफूँदों के पास इस काम के लिए कुछ खास एंज़ाइम होते हैं जिन्हें ये अपने चारों ओर स्रावित करती हैं। गौरतलब है कि एंज़ाइम या किण्वक जीवों के शरीर में बनने वाले विशेष प्रोटीन होते हैं जो कि जैविक उत्प्रेरक की तरह शरीर में होने वाली जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं को तेज़ कर देते हैं, जबकि इसके दौरान वे खुद अपरिवर्तित रहते हैं। ये एंज़ाइम जटिल और बड़े कार्बनिक अणुओं को ऐसे सरल रूपों में बदल देते हैं जिन्हें फफूँद आसानी-से अवशोषित कर सकती हैं। कुछ अन्य फफूँद अपने एंज़ाइम का इस्तेमाल सीधे कोशिकाओं में छेद करने के लिए करती हैं।

कुल मिलाकर फफूँद की विभिन्न प्रजातियों में पाए जाने वाले कई प्रकार के एंज़ाइम जीवित और मृत, दोनों ही ज़रियों से मिलने वाले जटिल रासायनिक पदार्थों का विघटन कर सकते हैं। पूरे जीव-जगत में कुछ जीवाणुओं को छोड़कर, इन पदार्थों को तोड़ पाना किसी के बस

की बात नहीं है। फफूँद भोजन कहाँ से प्राप्त कर रही हैं, इन्हीं ज़रियों के आधार पर इनका पर्यावरण यानी पारिस्थितिकी तंत्र में स्थान या ओहदा तय होता है। फफूँदों के जीवन की अभूतपूर्व सफलता के लिए ये एंज़ाइम एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

फफूँद की बनावट पर एक नज़र

साधारण फफूँद सु-केन्द्रिक अर्थात यूकैरियोटिक होती हैं। ये एककोशिकीय एवं बहुकोशिकीय, दोनों प्रकार की होती हैं। हालाँकि, इनका बहुकोशिकीय जीवन पौधों और जन्तुओं से अलग होता है क्योंकि इनकी कोशिकाओं के बीच की दीवार या तो अधूरी होती है या फिर होती ही नहीं है, जिस कारण इन्हें बहुकेन्द्रीय कहना ज़्यादा बेहतर होगा।

फफूँद की बनावट एककोशिकीय खमीर या फिर बहुकेन्द्रीय धागों के रूप में हो सकती है। इनके जीवन में ये दोनों ही अवस्थाएँ विकसित हो सकती हैं लेकिन केवल एककोशिकीय रूप में अपना जीवन व्यतीत करने वाली फफूँदों की संख्या काफी कम है। फफूँद अक्सर नमीदार वातावरण पसन्द करती हैं इसलिए ये पौधे की कोशिकाओं के अन्दर या जन्तु-ऊतकों में आसानी-से पाई जाती हैं जहाँ इनके लिए घुलनशील पोषक तत्वों का तैयार भोजन उपलब्ध रहता है जिसे ये आसानी-से सोख पाती हैं।

बहुकोशिकीय या बहुकेन्द्रीय फफूँद की बनावट इन्हें अपने फैलाव और जीवन संघर्ष के लिए अनुकूल बनाती है। इनकी कोशिकाएँ धागेनुमा या तन्तुनुमा संरचनाएँ बनाती हैं जिन्हें हाईफी या कवक-तन्तु कहा जाता है। ये छोटे-छोटे कवक-तन्तु या धागे आपस में मिलकर एक बड़ा जाल बनाते हैं जिसे माइसीलियम या कवक-जाल कहा जाता है। यहाँ हमें कवक-तन्तुओं के बारे में एक और

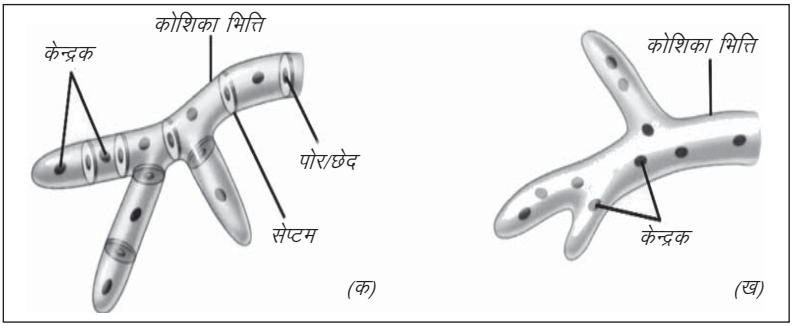

चित्र-1: *हाईफी या कवक-तन्तु के दो प्रकार - (क) सेप्टेट कवक-तन्तु जिनमें कोशिकाओं के बीच आड़ी दीवार पाई जाती है। (ख) सीनो-सायटिक कवक-तन्तु जिनमें कोशिकाओं के बीच कोई दीवार नहीं होती।*

बात जान लेना ज़रूरी है, वह है इनकी कोशिकाओं के बीच की आड़ी दीवार। कोशिकाओं के बीच यदि आड़ी दीवार मौजूद हो तो इन्हें खाँचेदार या सेप्टेट कवक-तन्तु और यदि आड़ी दीवार मौजूद नहीं हो तब इन्हें बिना खाँचे वाली या सेप्टम विहीन या सीनो-सायटिक कवक-तन्तु कहा जाता है। मज़ेदार बात यह है कि इनकी दीवारों में इतने बड़े छेद पाए जाते हैं कि उनमें से कोशिका का हर एक भाग, यहाँ तक कि केन्द्रक भी, आर-पार जा सकता है। तभी तो हम इन्हें बहुकेन्द्रीय कहने पर ज़ोर दे रहे थे।

कवकों की कोशिका-भित्ति में काइटिन नाम की एक जटिल शर्करा पाई जाती है। कीट-पतंगों के बाहरी कंकाल और पंख भी काइटिन के ही बने होते हैं। इस काइटिन की मौजूदगी ही फफूँद की विशिष्ट जीवन-शैली के लिए और भी मददगार होती है, क्योंकि पोषक पदार्थों के अवशोषण के दौरान कोशिका के अन्दर का दबाव काफी ज़्यादा हो जाता है। एक मज़बूत और लचीली कोशिका-भित्ति या दीवार के बिना, यह कोशिका इस दबाव को सह नहीं सकती और गुब्बारे की तरह फूलकर फट सकती है।

इसके अलावा, माइसीलियम (चित्र-2) की बनावट के कारण ही फफूँद की सतह और आयतन का अनुपात अत्यन्त बढ़ जाता है और इन्हें भोजन लेने में और भी आसानी होती है। इस व्यवस्था की विशालता का अन्दाज़ा इस जानकारी से लग सकता है कि केवल एक सेंटीमीटर गुणा एक सेंटीमीटर के वर्ग में 300 सेंटीमीटर क्षेत्रफल की लगभग एक किलोमीटर लम्बी कवक-तन्तु या हाईफी मौजूद रहती है। इस पर

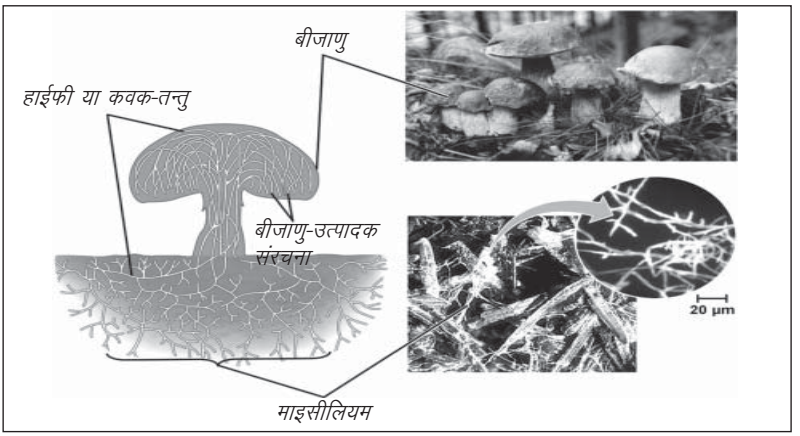

चित्र-2: *बहुकोशिकीय कवक की संरचना और माइसीलियम को दर्शाता चित्र।*

व्यवस्था तो देखिए कि जैसे-जैसे कवक अपना पैर पसारती है वैसे-वैसे प्रोटीन और अन्य ज़रूरी सामान तन्तुओं के बढ़ने वाले अन्तिम सिरे तक पहुँचा दिया जाता है और इस तरह से फफूँद अपनी सारी ताकत एवं रसद का इस्तेमाल अपनी लम्बाई बढ़ाने में करती है।

फफूँद वैसे तो चल-फिर नहीं सकतीं और न ही भोजन और साथी की तलाश में वे उड़ान भरने या बहने जैसी प्रक्रियाओं की मदद ले सकती हैं, लेकिन जैव-विकास के दौरान इन सब प्रक्रियाओं के लिए एक बहुत ही नायाब तरीका विकसित हुआ है इनमें। ये अपने तन्तु के जाल को फैलाकर, अपने सभी मकसदों को पूरा कर लेने में सक्षम हैं।

तो जनाब ये कवक-जाल या माइसीलियम ज़मीन के अन्दर-ही-अन्दर फैलकर कई पेड़ों की जड़ों को एक-दूसरे से जोड़ती हैं और पोषक तत्वों के परिवहन के साथ-साथ अन्य सूचनाएँ भी तेज़ गति से फैला सकती हैं। इसे हम इंटरनेट के www की तर्ज़ पर ही ज़मीन के भीतर का wood wide web कह सकते हैं। ऐसा माना जाता है कि यह पेड़ों के बीच आपसी सम्पर्क बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण तरीका है।

फफूँद में प्रजनन के तरीके

सभी सजीवों को अपनी प्रजाति को टिकाए रखने या उसमें निरन्तरता बनाए रखने के लिए उन जैसे ही नए जीवों को बनाना ज़रूरी है। यही तो प्रजनन का मकसद है। अधिकांश फफूँद इसके लिए बीजाणु या स्पोर्स की मदद लेती हैं। यदि आप फफूँद की प्रजनन क्षमता को परखना चाहते हैं तो बस एक रोटी या किसी भी फल का टुकड़ा यूँ ही हवा में खुला छोड़ दीजिए। आसपास फफूँद का नामोनिशान न होने के बावजूद कुछ ही दिनों में आपको उस पर उग आई रेशेदार माइसीलियम दिखने लगेंगी जो कि दरअसल हवा में मौजूद बीजाणुओं से ही यहाँ तक पहुँची हैं (चित्र-3)।

बॉक्स-1

प्रजनन के बारे में जानने से पहले हमें बीजाणु शब्द से रू-ब-रू होना ज़रूरी है। जीवविज्ञान में बीजाणु (spore) लैंगिक व अलैंगिक प्रजनन की एक संरचना है जिसे कोई जीव या जीव-जाति स्वयं को फैलाने या विषम परिस्थितियों में लम्बे समय तक जीवित रहने के लिए बनाती है। बीजाणु बहुत-से पौधों, शैवाल (ऐल्गी), कवक (फंगस) और प्रोटोज़ोआ के जीवन-चक्र का महत्वपूर्ण भाग होता है। हालाँकि बैक्टीरिया (जीवाणु) के बीजाणु किसी प्रजनन चक्र का भाग नहीं होते बल्कि कठिन परिस्थितिओं में बैक्टीरिया को जीवित रखने के लिए एक निष्क्रिय सिकुड़ा ढाँचा प्रदान करते हैं।

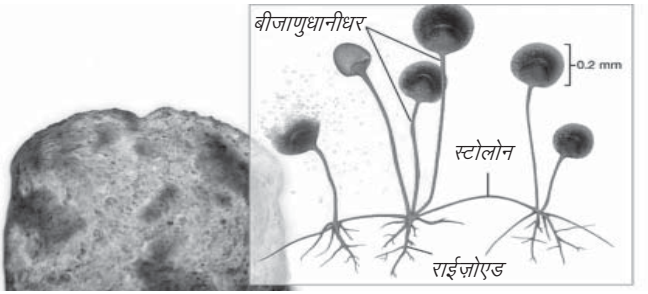

चित्र-3: *ब्रेड पर आम तौर पर उगने वाली फफूँद राइज़ोपस स्टोलोनिफर।*

ये बीजाणु लैंगिक और अलैंगिक, दोनों ही प्रकार से बनाए जा सकते हैं। चित्र-4 में एक सांकेतिक जीवन-चक्र दिया गया है जिसमें फफूँद के लैंगिक और अलैंगिक, दोनों प्रकार के प्रजनन शामिल हैं। अधिकांश फफूँदों में ये दोनों ही प्रकार पाए जाते हैं लेकिन कुछ में कोई एक ही तरीका अपनाने की क्षमता होती है।

हमने फफूँदों की बनावट में पढ़ा कि ये तन्तु-जाल बनाकर ज़मीन के अन्दर फैलती हैं लेकिन जब हमने नर और मादा फफूँद के बारे में सोचा तो पाया कि इनमें अन्तर ही नहीं है। तो फिर लैंगिक प्रजनन होगा कैसे? यह कैसे तय होता है कि दो विभिन्न अनुवांशिक पदार्थ वाले परिवार या पूर्वजों से उत्पन्न फफूँद के जाल ही आपस में प्रजनन के लिए मिल पाएँ जिससे जैव-विकास के लिए ज़रूरी विविधता की सम्भावनाएँ बनी रहें? इस प्रश्न का उत्तर है कि इनमें एक अत्यन्त सटीक एवं विशिष्ट व्यवस्था का विकास हुआ है ताकि ऐसा सम्भव हो पाए। अलग-अलग फफूँद के कवक-जाल एक विशेष खबरी रसायन या फेरोमोन छोड़ते हैं। यदि दो अलग-अलग फेरोमोन का सामना हुआ तो ये परीक्षा में पास हो जाते हैं और यह तन्तु-जाल आपस में मिल जाता है। यह पात्रता-परीक्षा सजीवों में विविधता को टिकाए रखने और उनके विकास को आधार देने के लिए बहुत ही ज़रूरी है।

अलैंगिक प्रजनन आम तौर पर लैंगिक बीजाणु से माइसीलियम अथवा तन्तु-जाल के अंकुरण और वृद्धि के रूप में होता है। बीजाणु की संरचना तथा रूप-रंग फफूँदों के प्रकार और वातावरण के आधार पर तय होते हैं। ब्रेड पर लगने वाली फफूँद हो या जलेबी बनाने के लिए ज़रूरी खमीर, हमारे आसपास दिखाई देने वाली अधिकतर फफूँदों में अलैंगिक जनन से ही तेज़ी-से अपना फैलाव किया जाता है।

फफूँद के इतिहास में ताक-झाँक

जीवाश्म और विज्ञान की

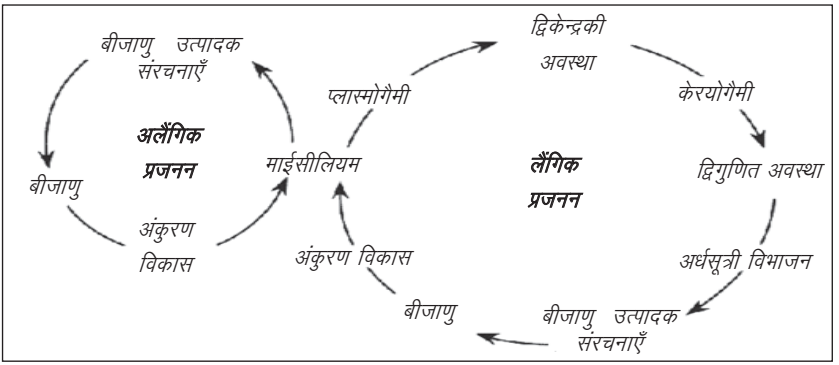

चित्र-4: *फफूँद के सांकेतिक जीवन-चक्र का चित्रात्मक वर्णन। कई फफूँद लैंगिक व अलैंगिक, दोनों ही तरीकों से प्रजनन करती हैं। वहीं कुछ केवल लैंगिक और कुछ अन्य केवल अलैंगिक तरीके से।*

आधुनिकतम तकनीकों से सजीवों के इतिहास के बारे में जानने-समझने में काफी मदद मिली है। इसी आधार पर हमें फफूँदों की प्राचीनता का अन्दाज़ा लग पाया है। इन नई-पुरानी तकनीकों पर आधारित खोजबीन से यह पता चला है कि फफूँद का पेड़-पौधे या बैक्टीरिया के परिवार की तुलना में जन्तुओं से ज़्यादा नज़दीकी रिश्ता है। जैव-विकास के दौरान पेड़-पौधे जब पानी के बाहर ज़मीन पर अपने जीवन को स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे तब उन्हें कई तकनीकी दिक्कतों का सामना करना पड़ता था जिसकी वजह से वे अपने लिए खनिज और पानी ले पाने में उतने समर्थ नहीं थे क्योंकि उनमें जड़ों का विकास नहीं हुआ था। लेकिन उस समय भी फफूँद ज़मीन पर पेड़-पौधों की मदद के लिए उनसे पहले ही मौजूद थीं। इन्होंने पौधों के साथ ज़मीन से पोषक तत्वों को सोखकर, उनके लिए खाने-पीने का इन्तज़ाम किया और इस तरह शुरुआती पौधों को ज़मीन पर अपने-आप को टिकाकर रखने में फफूँद मददगार साबित हुईं। और इन्हीं फफूँद की वजह से अनगिनत सजीवों के स्वागत और विकास के लिए हरी-भरी धरती तैयार हुई।

विविधता और वर्गीकरण

जीव-जगत के वर्गीकरण में भले ही फफूँदों को एक अलग जगत के रूप में मान लिया गया हो लेकिन इस समूह को आगे वर्गीकृत करना टेढ़ी खीर से कम न था। पहले फफूँदों को उनके शरीर-विज्ञान, आकार और रंग के अनुसार वर्गीकृत किया गया था। आधुनिक जीव वैज्ञानिक, कवक को वर्गीकृत करने के लिए, आण्विक (मॉलिक्यूलर) आनुवंशिकी और प्रजनन के तरीके पर भरोसा करते हैं। कवक वैज्ञानिक विभिन्न प्रजातियों

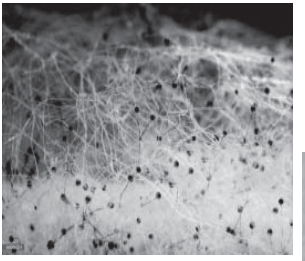

Zygomycota

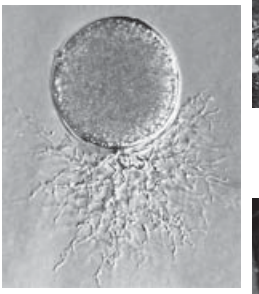

Chytridiomycota

Ascomycota

Basidiomycota

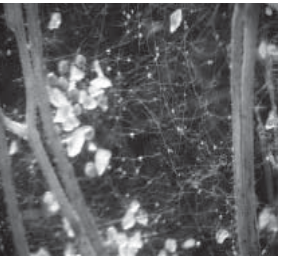

Glomeromycota

चित्र-5: *फफूँद-जगत की विविधता के आधार पर पाँच समूहों में वर्गीकरण दर्शाता उदाहरण-चित्र।*

के नामों को लेकर भी एकमत नहीं हैं। दरअसल, जीव-विज्ञान की नई तकनीकों के विकास के बाद फफूँद के बारे में मिलती जानकारियों के साथ-साथ इनके वर्गीकरण में भी बदलाव होता गया। कुछ मूलभूत मतभेदों के चलते अभी भी फफूँद-जगत में, कहीं-कहीं आप पाँच घरानों (संघों/फाइलम) को शामिल पाएँगे तो कहीं सात घरानों को। एक बात स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि फफूँद का यह वर्गीकरण कोई पत्थर की लकीर नहीं है, बल्कि इसके परे भी और सम्भावनाएँ हैं जिसमें आधुनिक जीव-विज्ञान नित नई जानकारियाँ जोड़ता जा रहा है, जिससे वर्गीकरण के स्वरूप में नए-नए बदलाव सामने आ रहे हैं। हम यहाँ फफूँद जगत की फैली हुई असीम विविधता को पाँच समूहों के आधार पर सतही तौर पर ही जानने का प्रयत्न करेंगे (चित्र-5)।

1. **Chytridiomycota** - 1,000 प्रजातियाँ। इस समूह में झील और मिट्टी में बहुतायत से मिलने वाली एककोशिकीय और बहुकोशिकीय फफूँद शामिल हैं। इनमें फ्लेजेला वाले बीजाणु के माध्यम से प्रजनन करने की विशेषता ही इन्हें अन्य फफूँद के परिवारों से अलग पहचान दिलाती है। जैव-विकास के

दौरान यह समूह बाकी फफूँदों से अलग होने वाला पहला समूह था। चित्र में chytridium की बीजाणु बनाने वाली गोलाकार संरचना से बहुकोशिकीय तन्तु-जाल निकलते हुए दिख रहे हैं।

2. **Zygomycota** - 1,000 प्रजातियाँ। इस समूह में ब्रेड और आलू जैसे खाने-पीने वाली चीज़ों पर तेज़ी-से बढ़ने वाली और उन्हें खराब करने वाली फफूँद शामिल हैं। इनके साथ-साथ जन्तुओं में मिलने वाली परजीवी फफूँद और अपघटक फफूँदों को भी इसी समूह में शामिल किया गया है। चित्र में म्यूकर नामक ब्रेड फफूँद का तन्तु-जाल दिखाई दे रहा है।

3. **Glomeromycota** - 160 प्रजातियाँ। इस समूह की अधिकांश फफूँद पेड़ों की जड़ों के साथ जड़ मायकोराइज़ा को बनाती हैं जो ज़मीन से पोषक तत्वों को सोखकर पौधों के लिए उपलब्ध करवाती हैं। संवहनीय पेड़ों की 80% प्रजातियों में कवक-मूल बनाने वाली फफूँद इसी समूह से होती हैं। चित्र में एक पेड़ की जड़ के अन्दर कवक-तन्तु दिखाई दे रहे हैं।

4. **Ascomycota** - 65,000 प्रजातियाँ। इन्हें थैली फफूँद या सैक फंजाइ भी कहा जाता है। और इस विविधता भरे समूह की सदस्य समुद्र, झील, नदियों से लेकर ज़मीन के हर कोने में फैली हुई हैं। इस समूह का नाम इनके प्याले के आकार के प्रजनन अंगों या फ्रूटिंग बॉडी की वजह से पड़ा है। चित्र में सन्तरे के छिलकेनुमा ऑरेंज पील फंगस दिखाई दे रही है।

5. **Basidiomycota** - 30,000 प्रजातियाँ। यह अपघटक फफूँदों का समूह है जिसकी विशेषता इन में पाई जाने वाली द्विकेन्द्रीय और बहुकोशिकीय संरचना है। इसे हम छतरीनुमा मशरूम के नाम से पहचानते हैं। यह अक्सर नमी वाली जगहों पर या पेड़ के पुराने कटे तनों के आसपास दिख जाता है। चित्र में दिखाया गया मशरूम उत्तरी गोलार्ध के जंगलों में मिलने वाली एक आम फफूँद है।

फफूँदों का अन्य सजीवों के साथ रिश्ता: एक पड़ताल

बेहिसाब शान-ओ-शौकत और फैलाव के बावजूद अन्य सभी जीवों की तुलना में फफूँद बेचारी उपेक्षित ही रही हैं। इनके बारे में हम अभी भी बहुत कम ही जान पाए हैं। फफूँदों की रिश्तेदारी हम इन्सानों के अलावा सभी जानवरों, पेड़-पौधों से लेकर सूक्ष्मजीवों तक फैली हुई है। यह आपसी रिश्ते फायदेमन्द या नुकसानदायक, दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। तो अब इनके द्वारा हम अन्य सभी सजीवों के साथ बनाए गए रिश्ते की पड़ताल करते हैं।

परियों की अँगूठी

कई बार घास के मैदान या जंगलों में रातों-रात छोटे-बड़े कुकुरमुत्तों को एक गोले के रूप में अचानक ही उगते हुए देखा गया है। ऐसा लगता है जैसे कई परियाँ गोला बनाकर नाच रही हों। लोगों ने शायद इसी कारण फफूँदों के इस झुण्ड को परियों के छल्लों का नाम दिया होगा। लेकिन इसके पीछे भी फफूँदों का ही हाथ है। बेसिडिओमाइसीट्स समूह के अन्य मशरूम या कुकुरमुत्तों की तरह ये भी सड़ी-गली लकड़ियों, पत्तियों आदि से कार्बनिक पदार्थों को सोख कर अपना भोजन प्राप्त करती हैं। इनके माइसीलियम ज़मीन के अन्दर ही हाईफी-तन्तुओं का फैलाव चारों दिशाओं में बराबरी से करना शुरू करते हैं, जैसे केन्द्रबिन्दु से समान दूरी पर एक गोला बना दिया गया हो। और आखिरकार ये सारे मशरूम इसी गोलाकार सीमा पर एक साथ ज़मीन से बाहर निकलकर प्रकट हो जाते हैं। तो अब हम यह तो कह ही सकते हैं कि ये छल्ले परियों के न होकर फफूँद के ही हैं।

सफाईमित्र 'अपघटक' फफूँद

पेड़-पौधों की कोशिका-भित्ति में पाए जाने वाले सेलूलोज़ और लिग्निन जैसे जटिल कार्बनिक यौगिक आसानी-से विघटित नहीं होते। यौगिकों को सरल अणुओं में तोड़ पाना हर किसी के बस की बात नहीं है। लेकिन फफूँद इस काम में उस्ताद होती हैं। यही नहीं, जेट ईंधन से लेकर ऑइल पेन्ट जैसे कार्बनिक पदार्थों को तोड़ने के लिए कोई-न-कोई फफूँद मौजूद ही है। यही बात जीवाणुओं पर भी लागू होती है। और इसलिए फफूँद और जीवाणु मिलकर पारिस्थितिकी तंत्र में साफ-सफाई बनाए रखते हैं और साथ ही, पेड़-पौधों के लिए ज़रूरी सरलतम अकार्बनिक अणुओं को उपलब्ध करवाते हैं। और इस तरह ये अपने सफाईमित्र 'अपघटक' होने की ज़िम्मेदारी को बखूबी निभाती हैं। इन अपघटकों के बिना कार्बन, नाइट्रोजन जैसे ज़रूरी पोषक-तत्व जटिल कार्बनिक पदार्थों के अन्दर ही बँधकर रह जाते। और अगर ऐसा होता तो ये पेड़-पौधे और इन पर निर्भर अन्य जीव-जन्तु भी नहीं बचते क्योंकि मिट्टी से लिए हुए ज़रूरी पोषक-तत्वों को फिर मिट्टी में मिला देना सम्भव ही नहीं होता। तो हम यह भी कह सकते हैं कि इन 'अपघटकों' के बिना ज़िन्दगी ही खत्म हो जाती।

सबकी सच्ची दोस्त: फफूँद

फफूँदों ने हर सजीव परिवार के साथ लेन-देन के रिश्ते बनाए हैं। ये फफूँद अपनी-अपनी मेज़बान से पोषक-तत्व सोखती हैं और बदले में अन्य कई तरह से सहायता करती हैं। तो इन रिश्तों में ये ताउम्र साथ निभाती हैं। हम भी इन रिश्तों की

बारीकियों को समझने की कोशिश करते हैं। फफूँदों की वफादारी को जानकर आप भी इनके प्रशंसक हो ही जाएँगे।

फफूँद-जड़/कवक-मूल

लगभग सभी संवहनी पेड़ों ने अपनी जड़ों में फफूँदों को रहने की जगह और पनाह दे दी है। और यह फफूँद किसी सच्चे पड़ोसी की तरह इन पेड़ों की जड़ों के साथ इतनी घुल-मिल जाती है कि अपना वजूद भूलकर फफूँद-जड़/कवक-मूल या माइकोराइज़ा के रूप में ही पहचानी जाती है। इनके कवक-तन्तु या हाईफी में पौधों से चिपकने के लिए विशेष संरचनाएँ हॉस्टोरिया के रूप में विकसित होती हैं जो कि विकसित होते हुए पेड़ के साथ पोषक तत्व के आदान-प्रदान या लेन-देन में मददगार होती हैं (चित्र-6)। ये कवक-मूल मिट्टी से फॉस्फेट और अन्य खनिजों को सोखने में उस्ताद होते हैं क्योंकि इनके कवक-जाल या माइसीलियम के विशाल जालनुमा फैलाव की वजह से, ये पेड़ों की जड़ों की तुलना में अधिक कुशलता से पोषक तत्व सोख सकते हैं। फफूँद को अपने इस काम के बदले में पेड़ों से भोजन के रूप में कार्बोहाइड्रेट मिलता रहता है। तो फफूँद और पेड़, दोनों एक-दूसरे से लेन-देन करके, एक-दूसरे की सहायता ही तो करते हैं। यह फफूँद-जड़ पेड़ों की जड़ों के भीतर या बाहर, दोनों तरह से विकसित हो सकती है।

पौधों के अन्दर बसने वाली फफूँद

फफूँद-जड़ या कवक-मूल के साथ-साथ पेड़ों की पत्तियों तथा अन्य भागों के अन्दर रहने वाली एंडोफाइट्स फफूँद भी खास होती हैं। ये एंडोफाइट्स या भीतरी-साथी घास और अन्य पौधों के अन्दर ज़हरीले

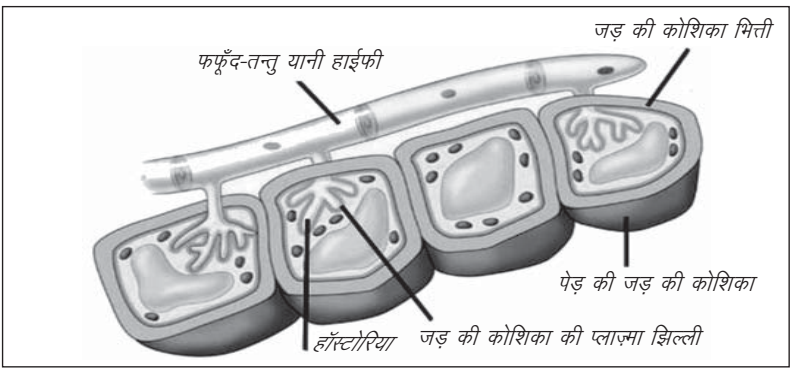

चित्र-6: *विशेष प्रकार के हाईफी या कवक-तन्तु जो अपनी हॉस्टोरिया नामक संरचना के ज़रिए पेड़ की जड़ से चिपक जाते हैं।*

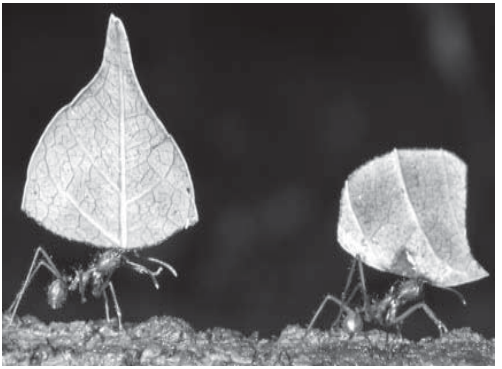

चित्र-7: फफूँद और चींटियों के बीच सम्बन्ध।

पदार्थ बनाकर, उन्हें चरने वाले जानवरों से बचाती हैं और साथ ही उन्हें गर्मी, सूखे और भारी धातु वाले वातावरण में जीने के लिए मज़बूती देती हैं।

फफूँद की खेती: कीटों और फफूँदों का आपसी समझौता

कुछ फफूँद घास चरने वाले जानवरों की आँतों में रहकर जटिल पदार्थों को सरलतम रूप में विघटित करके पाचन की प्रक्रिया को आसान बनाती हैं। चींटियों की कुछ विशेष प्रजातियाँ फफूँद के इसी गुण का फायदा उठाकर, फफूँद की खेती करती हैं।

ऊष्णकटिबन्धीय (Tropical) जंगलों में पाई जाने वाली किसान चींटियाँ, पत्तियों की तलाश में जंगलों को खंगाल डालती हैं। मज़े की बात है कि ये चींटियाँ इन पत्तियों को खुद नहीं पचा सकतीं। ये पत्तों को ढोकर अपने घरौंदों तक ले जाती हैं और वहाँ इनकी तहें बनाकर इकट्ठा करती रहती हैं। फिर इन्हें एक विशेष प्रकार की फफूँद को खिलाती हैं। ये फफूँद इन पत्तियों पर पनपती हैं क्योंकि इन्हें तो पत्तों के रूप में बैठे-बिठाए पोषक तत्व का भण्डार ही मिल जाता है। पत्तों पर फफूँद के बढ़ने के दौरान, इनके कवक-तन्तुओं में विशेष रूप से फूले हुए सिरे बनते हैं जो कि प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट से भरे कैप्सूल्स की तरह ही होते हैं। चींटियाँ मुख्यतः पोषक तत्वों से भरपूर इन्हीं सिरों को खाती हैं। इस तरह फफूँद न केवल चींटियों के लिए इन पत्तियों से लज़ीज़ खाना तैयार करती हैं, बल्कि ये पत्तियों में मौजूद ज़हरीले पदार्थों को भी तोड़कर, पत्तियों को ज़हर-मुक्त कर देती हैं। नहीं तो इन ज़हरीले पदार्थों से चींटियों को नुकसान पहुँच सकता है। यहाँ तक कि चींटियाँ इन ज़हरीले पदार्थों से भरी पत्तियों को खाकर अपनी जान भी गवाँ सकती हैं। किसान चींटियों और उनकी फफूँद-फसल का रिश्ता तो जन्म-जन्मान्तर का है और पाँच करोड़ सालों से ये एक-दूसरे के लिए साथ-साथ बने हुए हैं। और-तो-और, ये एक-दूसरे के बिना जी ही नहीं सकते।

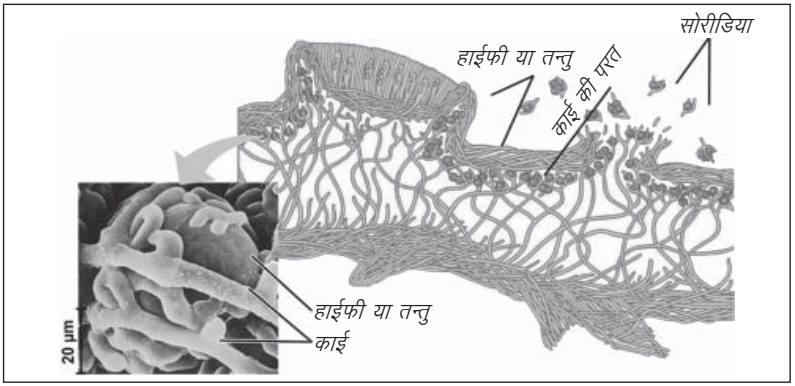

चित्र-8: *एक आम फफूँद की संरचना; एसकोमाईसीट लाइकेन।*

फफूँद और काई का साथ, एक जिस्म दो जान: लाइकेन

सजीवों के बीच सबसे अच्छी जोड़ी का खिताब तो यकीनन लाइकेन* को ही मिलना चाहिए क्योंकि इसे बनाने वाली फफूँद और काई इस तरह आपस में मिल जाती हैं कि अपने-अपने अलग वजूद को छोड़कर इस जोड़ी के रूप में ही जानी-पहचानी जाती हैं। मानो एक जिस्म में दो जानें बस रही हों। अब तक 20,000 से भी ज़्यादा लाइकेन की प्रजातियाँ खोजी जा चुकी हैं और इन सबका स्वतंत्र रूप से वैज्ञानिकी नामकरण भी किया गया है, मानो ये दोहरे जीव न होकर एक ही हों।

लाइकेन दरअसल फफूँद और काई के बीच बनने वाला सम्बन्ध है जिसमें काई के रूप में एककोशिकीय नीली-हरी काई या बहुकोशिकीय रेशेदार हरी काई हो सकती है। इसमें फफूँद सामान्य तौर पर बाहरी बनावट बनाती है और काई की कोशिकाएँ इसी बनावट के अन्दर की सतह पर अपना बसेरा बनाती हैं।

आकार एवं संरचना के आधार पर लाइकेन को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है (चित्र-9)। इनमें क्रस्टोस या पापड़ीनुमा, फोलिओस या पत्तिनुमा तथा फ्रूटीकोस या शाखित रेशेनुमा लाइकेन शामिल हैं।

अधिकांश लाइकेन में प्रत्येक साथी का काम कुछ ऐसा होता है जो कि दूसरे साथी के लिए अकेले अपने दम पर कर पाना नामुमकिन है। नीली-हरी काई का काम सूरज की रोशनी की मदद से कार्बनिक पोषक पदार्थों को बनाकर भोजन सामग्री उपलब्ध करवाना है। जबकि फफूँद अपने

** लाइकेन पर एक विस्तृत लेख 'न फफूँद न काई - एक नई इकाई' संदर्भ अंक-02 (नवम्बर-दिसम्बर, 1994) में पढ़ा जा सकता है।*

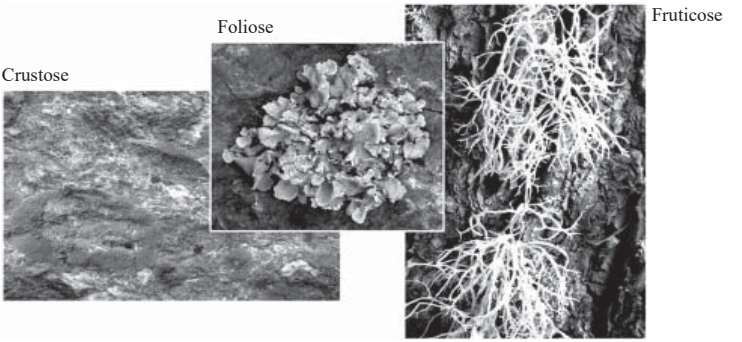

चित्र-9: *आकार एवं संरचना के आधार पर लाइकेन के तीन वर्गों को दर्शाता चित्र।*

प्रकाश-संश्लेषण कर पाने वाले साथी को रहने के लिए उपयुक्त माहौल उपलब्ध करवाती है। तन्तुओं की विशिष्ट बनावट की वजह से गैसों के लेन-देन और अपने साथी की सुरक्षा करने के साथ-साथ फफूँद पानी और खनिजों की आपूर्ति को भी बनाए रखने में सफल होती हैं। ये पानी और खनिज ज़्यादातर हवा की धूल और बारिश से सोखे जाते हैं। फफूँद कुछ विशिष्ट अम्ल भी बनाती हैं जिससे खनिजों का लेन-देन और भी आसान हो जाता है।

लाइकेन प्रकृति की अनमोल देन है। कड़ी बंजर चट्टानों पर सबसे पहले लाइकेन ही पनपती हैं और इन्हें सजीवों के रहने के लिए अनुकूल बनाती हैं। लाइकेन से हमें कई प्रकार की दवाइयाँ, रंग, इत्र और अम्ल तो मिलते ही हैं, साथ ही लाइकेन को कहीं-कहीं भोजन के रूप में खाया भी जाता है। हम जिन लाइकेन से रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में परिचित हैं, उनमें हमारे मसालों का एक महत्वपूर्ण प्रकार पत्थरचट्टा या पत्थर फूल भी है। रसायन विज्ञान की प्रयोगशाला में अम्ल और क्षार की पहचान के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले लिटमस, एक विशेष प्रकार की लाइकेन से ही बनते हैं। इनकी उपस्थिति को प्रदूषण-मुक्त जगहों का संकेत भी माना जाता है क्योंकि लाइकेन ऐसी जगह पर नहीं रच-बस पाती हैं जहाँ सल्फर डाइऑक्साइड की अधिकता होती है। जीवाश्म से मिले सबूतों ने इस बात को और भी पुख्ता किया है कि लाइकेन ने ही 42 करोड़ वर्षों पहले अपने कारनामों से पौधों के जीवन के लिए रास्ते खोले थे।

सदाबहार के औषधीय गुण भी फफूँद के ही हैं कमाल

सदाबहार या बारहमासी को हमारे यहाँ सजावटी पौधे के रूप में उगाया जाता है। इसके फूल आम तौर पर गुलाबी, बैंगनी या सफेद रंग के होते

हैं। इसके नाम के अनुसार ही यह पौधा पूरे साल भर हरा-भरा रहता है। यह पूरा-का-पूरा पौधा ही औषधीय गुणों का भण्डार माना जाता है। इसकी पत्तियों से लेकर जड़ों तक, हर एक हिस्सा किसी-न-किसी तरह की बीमारी के इलाज में काम आता है। इस पौधे में कई तरह के महत्वपूर्ण क्षार (अलकेलॉइड्स) पाए जाते हैं जिनका उपयोग दर्द-निवारक से लेकर मधुमेह, मानसिक विकार, उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियों के साथ-साथ कैंसर के उपचार में भी किया जाता है। हाल ही में किए गए अध्ययन से यह साबित हो गया है कि सदाबहार के इन गुणों के पीछे भी फफूँदों का ही योगदान है। इन पौधों के अन्दर सहजीवी के रूप में बसने वाली डेढ़ सौ से भी ज़्यादा तरह की फफूँदों की प्रजातियों को इन पौधों की जड़ों और पत्तियों में खोजा जा चुका है। तो जनाब, कहने का मतलब यह हुआ कि फफूँदों ने ही अप्रत्यक्ष रूप से सदाबहार को इतना महत्वपूर्ण औषधीय पौधा बनाने में मदद की है।

पाइलोबोलस: टोपी की बन्दूक से गोली मारने वाली फफूँद

पाइलोबोलस ज़ाइगोमाइकोटा समूह की एक अनोखी सदस्य है। यह गाय, घोड़े आदि मवेशियों के गोबर या मल में पाई जाने वाली एक सामान्य अपघटक फफूँद है। अपने जीवन-चक्र को पूरा करने के लिए इन फफूँदों को मवेशियों के पाचन-तंत्र से होकर गुज़रना ज़रूरी होता है, लेकिन समस्या यह है कि आम तौर पर ये चौपाए जानवर अपने गोबर या मल के आसपास का चारा नहीं खाते। तो फिर पाइलोबोलस फफूँद आखिर इनके पाचन-तंत्र तक कैसे पहुँचती है?

पाइलोबोलस फफूँद ब्रेड पर सामान्यतः उगने वाली काली फफूँदों

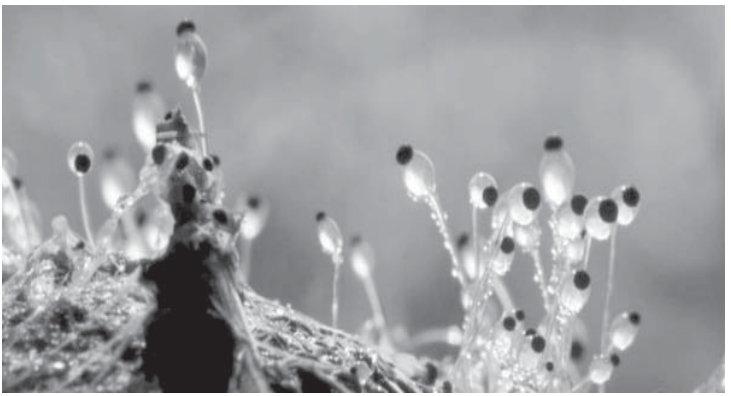

चित्र-10: *पाइलोबोलस फफूँद के तन्तुओं के ऊपरी सिरे पर काली गोलियों के रूप में बीजाणुओं के समूह।*

की तरह ही छोटी होती है, जिनकी ऊँचाई 10 मि.मी. से भी कम पाई गई है। ये अपने कवक-तन्तु या माइसीलियम के ऊपरी सिरे पर बीजाणु का एक समूह बनाती हैं। बीजाणुओं से भरी और चिपचिपे-तरल से लिपटी इन काली गोलियों को वास्तव में बन्दूक की गोली की तरह ही लगभग 90 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से दागकर अपने मूल स्थान से प्रकाश की दिशा में 10 फीट दूर, घास की पत्तियों तक पहुँचाया जाता है। इसके बाद, घास की पत्तियों से चिपके हुए इन बीजाणुओं को मवेशी अनजाने में ही खा लेते हैं और ये बीजाणु बिना किसी नुकसान के मवेशियों के अन्दर पूरे पाचन-तंत्र की सैर करके आखिरकार गोबर के साथ बाहर आ जाते हैं। और इस तरह, फिर से अपनी आबादी को बढ़ाने में कामयाब हो जाते हैं।

हालाँकि, पाइलोबोलस फफूँद खुद तो जानवरों को कोई नुकसान नहीं पहुँचाती हैं लेकिन इनके बीजाणुओं से भरी काली गोलियों के साथ-साथ फेफड़ों को नुकसान पहुँचाने वाले परजीवी कृमि भी मेज़बान तक पहुँचने के अपने मकसद को पूरा कर लेते हैं। और इस तरह बेचारी पाइलोबोलस फफूँद अनजाने में ही मवेशियों के लिए परेशानी का कारण बन जाती हैं।

फफूँद का व्यावहारिक उपयोग

फफूँद पारिस्थितिक तंत्र का एक अभिन्न हिस्सा हैं जिनके न होने से सड़े-गले जीवों और उनके अपशिष्टों का विघटन नामुमकिन हो जाएगा और न ही पोषक तत्वों का चक्रीकरण सम्भव होगा। माइकोराइज़ा के बिना 80 से 90% पेड़-पौधे और घास जीवित भी नहीं रहेंगे और फसलों का उत्पादन घट ही जाएगा। मशरूम और अन्य कई फफूँद पोषक तत्वों से भरपूर भोजन के रूप में बड़े चाव से खाए जाते हैं। कई बेकरी और डेयरी उत्पादों के बारे में फफूँद के बिना सोचा भी नहीं जा सकता है। विभिन्न स्वाद और गन्ध वाले 'चीज़' भी फफूँदों की ही देन हैं। इसके अलावा कई तरह की शराब और ब्रेड को बनाने में फफूँदों का उपयोग कई सदियों से चला आ रहा है। यहाँ एककोशिकीय खमीर का ज़िक्र करना तो बनता ही है। *सेक्रोमाइसिस सखाइसी* इन सभी के लिए मददगार है। इसके विभिन्न प्रकारों को Baker's yeast या Brewer's yeast के नाम से भी जाना जाता है। फफूँद 'रोगजनक' तो है पर फफूँद से हमें कई महत्वपूर्ण दवाइयाँ मिलती हैं जिसमें एंटीबायोटिक, प्रतिजैविक खून जमना, उच्च रक्तदाब, कॉलेस्ट्रॉल, मतिभ्रम जैसे कई मर्ज़ों की दवाइयाँ प्रमुख हैं।

फफूँद का जैविक-खेती में कीटनाशकों की तरह भी उपयोग

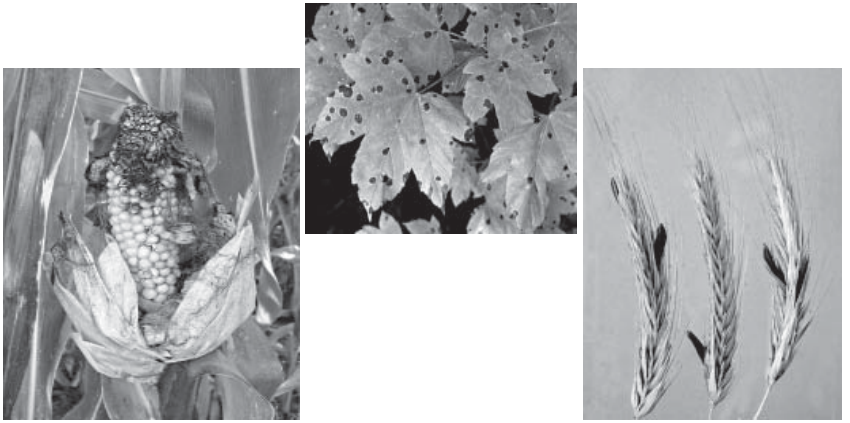

चित्र-11: पेड़ों को नुकसान पहुँचाने वाली फफूँदों के उदाहरण।

किया जाता है, जिसमें नुकसान पहुँचाने वाले कीटों को खत्म करने के लिए, उन पर आश्रित फफूँद का प्रयोग करते हैं। इतना ही नहीं, शोध और अनुसन्धान के लिए मॉडल-जीवों के रूप में फफूँद का उपयोग निर्विवाद है जिसमें अनुवांशिकी, जैव-तकनीकी एवं रोग विज्ञान प्रमुख क्षेत्र हैं जहाँ फफूँद हमारे प्रयोगों में मददगार साबित हो रही हैं।

सिक्के का दूसरा पहलू - परजीवी/ नुकसानदायक फफूँद

फफूँदों के इतने गुणगान करने के बाद हमें इनके दूसरे पहलू पर भी गौर करना ही होगा। अभी तक पहचानी गई फफूँद में से 30% फफूँद किसी-न-किसी तरह से अन्य जीवों के लिए नुकसानदायक हैं। इनके अनचाहे हमले का शिकार केवल हम मनुष्य ही नहीं बल्कि पेड़-पौधे और अन्य जानवर भी होते हैं। फायदेमन्द फफूँद की तरह ये भी अपने मेज़बान से पोषक तत्व लेती हैं, लेकिन बदले में अपने मेज़बान को कोई फायदा नहीं पहुँचातीं। बल्कि इनके पनपने से बेचारे कई जीव मुसीबत में फँस जाते हैं।

हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में काम आने वाली बहुत-सी वस्तुएँ और उपकरण फफूँद की वजह से खराब हो जाते हैं। पौधों पर हमला करने वाली अधिकांश फफूँद एक विशेष प्रकार के रसायन, फफूँद-ज़हर या माइकोटॉक्सिन्स, निकालती हैं जो मनुष्य और अन्य जानवरों के लिए खतरनाक होते हैं।

अधिकांश परजीवी फफूँद पौधों में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करती हैं। इनके संक्रमण से मुख्यतः ऐंजियोस्पर्म

व जिम्नोस्पर्म प्रभावित होते हैं। गेहूँ का रतुआ तथा कण्डुवा, गन्ने का लाली रोग, कपास (रुई) तथा अरहर के पौधों का उक्ठा (विल्ट) रोग एवं सरसों का श्वेत रतुआ रोग, ये सब कवकों के द्वारा ही होते हैं। कुछ फलों (जैसे सेब, केला) में सड़न भी कवकों यानी फफूँदों द्वारा होती है। निम्न श्रेणी के पौधों में फफूँदो से होने वाले केवल कुछ ही रोगों की जानकारी प्राप्त है।

कुछ फफूँद-रोगों का सम्बन्ध संसार के सबसे भयंकर अकालों से रहा है। आलू में सन् 1943 में फैले लेट ब्लाइट नामक रोग ने आयरलैंड में भयंकर अकाल उत्पन्न किया और लगभग दस लाख लोगों की मृत्यु का कारण बना। सन् 1943 में बंगाल में चावल पर लगे भूरे पर्ण चित्ती (ब्राउन लीफ स्पॉट) रोग से विशाल मात्रा में चावल नष्ट होने के कारण भयंकर अकाल पड़ा जिससे लगभग बीस लाख लोगों की मृत्यु हुई। सबसे ताज़ा उदाहरण इंग्लैंड का है जहाँ के पोल्ट्री फार्म्स में 1960 के आसपास मुर्गियों पर एक फफूँद की वजह से दस लाख मुर्गियों को मारना पड़ा। बाद में, इसके बारे में छानबीन से पता चला कि इन मुर्गियों को खाने में दी जाने वाले मूंगफली दानों में मौजूद एक फफूँद के कारण ऐसा ज़हरीला पदार्थ बना था जिसकी वजह से ये पक्षी मरते जा रहे थे।

इसी तरह का एक और मामला घास के परिवार के एक अनाज - राई का है। पौधों पर एक विशेष फफूँद 'एरगोटस' नामक संरचना बनाती है। यदि इन पौधों से प्राप्त अनाज के आटे को मनुष्य द्वारा उपयोग में लाया जाए तो इसके संक्रमित ज़हर से गैंग्रीन, तंत्रिका एठन, जलन, मतिभ्रम और अस्थाई पागलपन जैसे भयंकर लक्षण दिखाई देते हैं। 944 ईसवी के आसपास फ्रांस में एरगोटिज़्म महामारी के कारण चालीस हज़ार से ज़्यादा लोग मारे गए थे।

पौधों की तुलना में जानवर परजीवी फफूँद के हमलों के लिए अपेक्षाकृत कम संवेदनशील होते हैं। फफूँद की कुछ जातियाँ पशुओं में परजीवी के रूप में रहती हैं तथा उनमें अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करती हैं। पालतू पशुओं में भी कई प्रकार की फफूँदजनित बीमारियाँ उनके लिए परेशानी का सबब बन जाती हैं। जैसे पक्षी, खरगोश तथा बिल्ली में होने वाले कुछ चर्मरोग, पशुओं में कृष्ण जंघा (ब्लैक लेग) रोग और गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूअर आदि पशुओं में होने वाला 'गण्ठीला जबड़ा' नामक रोग आम तौर पर सुनने में आते हैं। ऐसी ही एक परजीवी फफूँद के हमले की वजह से मेंढक जैसे उभयचरों की 200 से ज़्यादा प्रजातियाँ खत्म हो गईं।

मनुष्य में भी फफूँद की वजह से कई बीमारियाँ मुसीबतें पैदा करती हैं।

किसी फफूँद परजीवी की वजह से हमारे शरीर में होने वाले संक्रमण को माइकोसिस कहा जाता है। फफूँद अक्सर हवा और मिट्टी में मौजूद अपने बीजाणुओं से ही फैलती हैं। यहाँ से वे हमारी साँस में या शरीर की सतह यानी कि चमड़ी के सम्पर्क में आ सकती हैं। लेकिन इस तरह से अन्दर आने वाले बीजाणु के ज़्यादातर प्रकार संक्रमण का कारण नहीं बनते हैं। फफूँद का संक्रमण तब होता है जब शरीर कमज़ोरी के समय फफूँद के सम्पर्क में आता है। यह कमज़ोरी एक कमज़ोर प्रतिरक्षा प्रणाली वाले या ऐसे व्यक्ति में हो सकती है जो अपने शरीर पर इनके उगने के लिए एक गर्म और नम वातावरण प्रदान करता है। कुछ त्वचा संक्रमण के अलावा, फंगल संक्रमण शायद ही कभी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है। एक तिहाई फंगल रोग अक्सर ऐसी फफूँद के कारण होते हैं जो हमारे आसपास आम तौर पर पाई जाती हैं। इन्सानों में फफूँद से होने वाली कुछ आम बीमारियाँ हैं -

टिनिया संक्रमण: त्वचा, बाल और नाखूनों की सतह पर फंगल संक्रमण होना बेहद आम है। इसमें दाद, खाज और एथलीट फुट शामिल हैं। अत्यन्त संक्रामक होने के बावजूद, इनसे छुटकारा पाने में एंटीफंगल दवाइयाँ असरदार होती हैं।

कैंडिडिअसिस: कुछ परजीवी फफूँद अवसरवादी होती हैं। ये केवल तभी फैलती हैं जब हमारे शरीर में पाए जाने वाले मददगार सूक्ष्मजीवों या रासायनिक वातावरण में परिवर्तन होता है, या फिर प्रतिरक्षा प्रणाली की मुस्तैदी में ढील मिल जाती है। उदाहरण के लिए, *कैंडिडा अल्बिकन्स* फफूँद हमारे शरीर के कुछ हिस्सों में सामान्य तौर पर रहती है। कुछ परिस्थितियों में, कैंडिडा बहुत तेज़ी-से बढ़ सकती है और रोगजनक बन जाती है जिससे तथाकथित 'खमीर संक्रमण' हो जाता है। कैंडिडा यीस्ट या खमीर शरीर की नम सतहों पर उगती है और योनी के संक्रमण का एक आम कारण है, इसलिए इसे कैंडिडा संक्रमण भी कहा जाता है। इससे मुँह या गले का संक्रमण भी हो सकता है, जिसे 'थ्रश' कहा जाता है। वर्तमान में कोविड के मरीज़ों पर अपना असर दिखाने वाली व्हाइट फंगस भी इसी तरह की फफूँद है।

अस्पेर्गिल्लोसिस: अस्पेर्गिल्लोसिस मिट्टी, वनस्पति के क्षय, इन्सुलेट सामग्री, एयर कंडीशनिंग वेंट्स और धूल में पाई जाने वाली एक आम फफूँद 'अस्पेर्गिल्लस' से होता है। ज़्यादातर मामलों में, अस्पेर्गिल्लस स्पोर्स से कोई नुकसान नहीं होता है। हालाँकि, कुछ लोगों में, अस्पेर्गिल्लस फेफड़ों में संक्रमण पैदा कर सकती है।

कोक्सीडीआइओमायकोसिस: इसके बीजाणु दूषित धूल के साथ साँस के

माध्यम से फेफड़ों में चले जाते हैं जिससे फफूँद विकसित हो जाती है। यद्यपि अधिकांश लोग कुछ हफ्तों में ही ठीक हो जाते हैं।

ब्लैक फंगस या म्यूकरमाइकोसिस: भारत में कोविड-19 की दूसरी लहर के बाद यह नई समस्या उभरकर आई है। इतना व्यापक होने पर भी यह उन्हीं इन्सानों को संक्रमित करती है जिनका प्रतिरक्षा तंत्र कमज़ोर होता है, क्योंकि इसके रोगाणुओं से हमारा प्रतिरोध तंत्र आसानी-से लड़ लेता है। जिनमें कोविड-19, एचआईवी/एड्स और अन्य वायरल बीमारियों, जन्मजात अस्थि मज्जा रोग, गम्भीर जलन, कैंसर और अनुपचारित या अनियमित रूप से इलाज किए गए मधुमेह से पीड़ित लोगों की प्रतिरोधक क्षमता कम हो गई हो, उनमें म्यूकरमाइकोसिस होने का खतरा होता है। स्टेरॉयड प्राप्त करने वाले कोविड-19 रोगियों को विशेष रूप से जोखिम होता है क्योंकि स्टेरॉयड प्रतिरक्षा प्रणाली को दबा देते हैं।

***

इस लेख के माध्यम से हमने फफूँद को कुछ हद तक समझने की कोशिश की है। हम अक्सर फफूँदों के बारे में सोचते हैं कि ये हमारे भोजन एवं अन्य काम की चीज़ों को बर्बाद कर देती हैं और साथ ही, उनकी वजह से कई बीमारियाँ फैलती हैं। लेकिन हमें फफूँद से होने वाले कुछ नुकसानों की वजह से फफूँद से होने वाले व्यावहारिक और व्यावसायिक फायदों को नज़रअन्दाज़ नहीं करना चाहिए।

इस जीव-जगत में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाली और वास्तव में स्पॉटलाइट से दूर रहते हुए पर्दे के पीछे से काम करने वाली, इन फफूँदों की अच्छाइयों की ओर ध्यान देने की ज़रूरत है। इनसे हम आपसी रिश्तों का तालमेल, प्रशंसा की परवाह किए बिना अपना काम मुस्तैदी से करते जाना और आसानी-से हार न मानने जैसे गुण तो सीख ही सकते हैं। और इसीलिए मुझे लगता है कि फफूँदों का अनोखा संसार सच में ही शक्तिशाली... सर्वव्यापी... जीवन का आधार कहलाए जाने योग्य है।

चेतना खांबेटे: केन्द्रीय विद्यालय, इन्दौर में जीव-विज्ञान पढ़ाती हैं।

सभी चित्र: इंटरनेट और *कैम्बल बायोलॉजी* किताब से साभार।

सन्दर्भ:

- Unit5.Chapter 1..Campbell Biology, Tenth_Edition-Reece,Urry, Cain_et_al
- https://hi.wikipedia.org/wiki
- https://opentextbc.ca/biology2eopenstax/chapter/importance-of-fungi-in-human-life
- https://bio.libretexts.org/Bookshelves/Introductory_and_General_Biology

शिक्षकों के लिए विज्ञान करके सीखने की कार्यशाला के अनुभव

शिक्षकों की 'सुनना'

अनीश मोकाशी, गुरिंदर सिंह और हनी सिंह

हम यहाँ स्कूली शिक्षकों के लिए आयोजित 'विज्ञान करके सीखने' के कुछ सत्रों के अनुभव साझा कर रहे हैं। ये सत्र ऊष्मा और तापमान विषय पर केन्द्रित थे। हम विज्ञान सीखने से सम्बन्धित उभरे मुद्दों, अपने तरीके की समालोचना तथा उसमें परिवर्तन करने और कार्यशाला सत्रों के लक्ष्यों का आकलन करने की दृष्टि से इन अनुभवों पर विचार करेंगे। इन विचारों को सन्दर्भ देने के लिए हम एलीनॉर डकवर्थ के काम का हवाला भी देंगे।

यदि ज्ञान का निर्माण हर व्यक्ति को करना है, तो शिक्षण की क्या भूमिका है? मेरे ख्याल से शिक्षण के दो पहलू हैं। पहला है छात्रों को अध्ययन के विषय से सम्बन्धित परिघटनाओं के सम्पर्क में लाना – वास्तविक चीज़ों, न कि उसके बारे में किताबों या व्याख्यानों से – और उन्हें उन चीज़ों पर ध्यान देने में मदद करना जो दिलचस्प हैं; उन्हें विषय से जोड़ना ताकि वे उसके बारे में सोचना और अचरज करना जारी रखें। दूसरा है, छात्रों को चीज़ों की व्याख्याएँ देने की बजाय वे जो मतलब निकालें, उसकी व्याख्या करने में मदद करना, उस मतलब को समझने की कोशिश करना। (Duckworth, 1996 p. 173-174)

करके सीखो कार्यशाला

हम लोग महाराष्ट्र में आदिवासी समुदायों के छात्रों के लिए संचालित शासकीय शालाओं में विज्ञान करके सीखने को प्रोत्साहित करने के एक कार्यक्रम में शामिल रहे हैं। कार्यक्रम का उद्देश्य बच्चों को छोटे-छोटे समूहों में प्रयोग करने के अवसर देना है और कक्षा में ऐसे तौर-तरीकों को आगे बढ़ाना है जिनसे छात्रों के विचारों और बातचीत को जगह मिल सके। शिक्षकों के लिए विज्ञान करके सीखने की कार्यशालाएँ इस कार्यक्रम का प्रमुख हिस्सा हैं। इन कार्यशालाओं का मार्गदर्शन मददकर्ताओं (फेसिलिटेटर - जिनमें हम और अन्य लोग शामिल थे) द्वारा किया जाता है। कार्यशालाओं में उम्मीद की जाती है कि शिक्षक समूहों में विज्ञान के छोटे-छोटे प्रयोग या गतिविधियाँ करेंगे, अपने अवलोकनों और उनके कारणों

चित्र-1: *शिक्षक समूहों में विज्ञान के छोटे-छोटे प्रयोग व उन पर चर्चा करते हुए।*

पर अपने समूह में चर्चा करेंगे और फिर इन्हें सबके सामने प्रस्तुत करेंगे। ये कार्यशालाएँ शिक्षकों को विभिन्न शिक्षण विधियों का अनुभव देने के लिए संचालित की जाती हैं, जिन्हें वे अपनी कक्षा में अपना सकते हैं, कक्षा के अनुरूप ढाल सकते हैं। अलबत्ता, व्यवस्था और खर्चे की अड़चनों के चलते हर मददकर्ता को शिक्षकों के किसी भी समूह के साथ सीमित समय ही मिल पाता है, इसलिए एक अनकही माँग रहती है कि प्रत्येक सत्र के अन्त तक पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु का कुछ पूर्व-निर्धारित अंश पूरा हो जाए। यह माँग इसलिए भी होती है क्योंकि शिक्षकों पर यह ज़बरदस्त दबाव रहता है कि वे छात्रों को पाठ्यपुस्तक के सवालों के जवाब सिखा दें ताकि वे परीक्षा उत्तीर्ण कर सकें। लिहाज़ा, एक मायने में यह ज़िम्मेदारी मददकर्ता की होती है कि वे शिक्षकों को एक अलग तरीके पर विचार करने को तैयार करें।

काफी सारे शिक्षक तो कार्यशाला में यह मानकर आते हैं कि उन्हें भाषण पिलाए जाएँगे इसलिए उन्हें समूहों में चर्चा करने एवं अपने अवलोकनों व व्याख्याओं पर बातचीत का आदी होने में समय लगता है। ऐसा कई बार हुआ कि शिक्षकों का धैर्य जवाब दे गया और उन्होंने चर्चा के माध्यम से जवाब उभरने की प्रतीक्षा करने की बजाय माँग की कि 'जवाब' बता दिया जाए। शिक्षकों ने अपनी समस्याएँ भी व्यक्त की हैं, जैसे – कक्षा में छात्रों को बातचीत करने देने में कठिनाई, अन्ततः परीक्षा के हिसाब से पढ़ाने की मजबूरी, शिक्षण की भाषा मराठी से जान-पहचान के अभाव में बच्चों को

लिखने-पढ़ने में दिक्कत, छात्रों को टोलियों में बिठा कर प्रयोग करने की वजह से उपकरणों की व्यवस्था व रख-रखाव की दिक्कतें, खास तौर से शिक्षकों व प्रयोगशाला सहायकों की कमी जैसी व्यवस्थागत दिक्कतें, शिक्षकों पर तरह-तरह का प्रशासनिक बोझ क्योंकि उन्हें प्राय: नौकरशाही का सबसे निचला पायदान समझा जाता है। बिना किसी दो राय के, ये सभी समस्याएँ, सरकारी नीतियों, मूल्यांकन के मापदण्डों, शिक्षा तंत्र में शिक्षकों द्वारा किए जाने वाले काम के महत्व को मान्यता और शिक्षकों को पहचान का एहसास, स्वायत्तता व शिक्षण के तरीकों से जुड़ी हैं (Unterhalter, McCowan, & Rampal, 2015)। यह तो नहीं सोचा जा सकता कि कार्यशाला के सत्र इस व्यापक सन्दर्भ से अलग-थलग निर्वात में होते हैं।

गर्मी और तापमान के सत्र

इस पर्चे में हम 'ऊष्मा और तापमान' सत्र के अनुभव साझा करेंगे। ये सत्र दो अलग-अलग कार्यशालाओं में शिक्षकों के साथ किए गए थे। जुलाई 2018 में पहली कार्यशाला में शिक्षकों के पाँच समूह थे और नवम्बर 2018 में आयोजित दूसरी कार्यशाला में शिक्षकों के दो समूह थे। प्रत्येक समूह में करीब 30 शिक्षक थे। कार्यशाला में एक सत्र एक-डेढ़ घण्टे का होता था और हमें हर कार्यशाला में शिक्षकों के हरेक समूह के साथ दो ऐसे सत्र मिले थे। तीन घण्टे के लिए योजना यह थी कि शिक्षकों के साथ मिडिल स्कूल विज्ञान के ऊष्मा और तापमान के प्रमुख विषयों पर चर्चा होगी। प्रत्येक कार्यशाला में विभिन्न विषयों के सत्र समान्तर चलते थे। प्रत्येक सत्र में अलग-अलग शिक्षक शामिल होते थे। कार्यशाला में भाग लेने वाले शिक्षक मिडिल और हाई स्कूल के थे और विज्ञान में उनकी पृष्ठभूमियों में काफी विविधता थी। कुछ शिक्षकों ने विज्ञान सिर्फ 10वीं या 12वीं कक्षा तक पढ़ा था जबकि कुछ स्नातक थे और बहुत थोड़े-से स्नातकोत्तर भी थे।

शिक्षकों द्वारा किए गए अधिकांश प्रयोग और गतिविधियाँ 'विज्ञान करके सीखो' सम्बन्धी पाठ्यपुस्तकों के ही संशोधित रूप थे जो अतीत में किए गए इसी तरह के कार्यों से विकसित हुए थे। सत्र की कुछ योजना तो पाठ्यपुस्तकों के अनुसार बनाई गई थी जबकि कुछ योजना ज़रूरत के हिसाब से उभरती थी। हमारी टीम दिन के अन्त में इस बात पर विचार करती थी कि सत्र कैसा चला और फीडबैक तथा सुझावों के लिए इन बारीकियों को एक बड़े समूह के साथ साझा भी करती थी ताकि अगले दिन के सत्र को संशोधित किया जा सके। यहाँ हम प्रयोगों और चर्चाओं में शिक्षकों की भागीदारी – छोटे-छोटे समूहों में भी

और पूरी कक्षा के साथ भी - की चर्चा करेंगे। हम खास तौर से इस विषय से सम्बन्धित कुछ अवधारणाओं के बारे में शिक्षकों के विचारों और अभिव्यक्तियों पर ध्यान देंगे – शिक्षण-विधि सम्बन्धी विचारों के उदाहरणों के रूप में भी और यह बताने के लिए भी कि लोग इन अवधारणाओं को किस तरह समझते हैं। हमें यकीन है कि शिक्षकों के साथ के इन अनुभवों से मिले सबक भविष्य में कार्यशालाओं और सत्रों को डिज़ाइन करने में मददगार होंगे।

हवा के ऊष्मीय प्रसार पर एक प्रयोग

पदार्थ की तीन अवस्थाओं में ऊष्मा के स्थानान्तरण की विभिन्न विधियों तथा प्रसार को लेकर किए गए कई प्रयोगों में से एक में शिक्षकों ने हवा के प्रसार के अवलोकन का एक प्रयोग किया था। इस प्रयोग के लिए काँच से बनी एक छोटी इंजेक्शन की शीशी का उपयोग किया गया था। (इस प्रयोग को एक सेवानिवृत्त शिक्षक उमेश चौहान ने विकसित किया था जब वे होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े थे।) शीशी के रबर के ढक्कन में एक सुराख किया गया और इसमें एक बॉल पेन की खाली रीफिल घुसा दी गई (चित्र-2)। रीफिल में रंगीन पानी की एक बूँद डाल दी गई। इस शीशी को हथेली में दबाकर पकड़ने पर रीफिल की बूँद शीशी से दूर की ओर सरकती है। पहले यह प्रयोग शिक्षकों को करके दिखाया गया और फिर कहा गया कि वे इसे अपने छोटे-छोटे समूहों में करें। प्रत्येक समूह को अलग-अलग उपकरण दिए गए।

__चित्र-2:__ हवा के प्रसार के अवलोकन के एक प्रयोग का चित्रात्मक वर्णन। __चित्र:__ बाल वैज्ञानिक।

इसके बाद शिक्षकों से एक सवाल पूछा गया, "आप क्या देखते हैं और आपके खयाल से ऐसा क्यों होता है?" अपने-अपने पाँच सदस्यों के समूह में इस पर 15-20 मिनट चर्चा करने के बाद प्रत्येक समूह की चर्चा को बड़े समूह में प्रस्तुत करना था।

एक शिक्षक ने सूक्ष्म-कणों के आधार पर प्रसार की व्याख्या करने का प्रयास किया – "जब हम गर्मी पाकर हवा को फैलते देखते

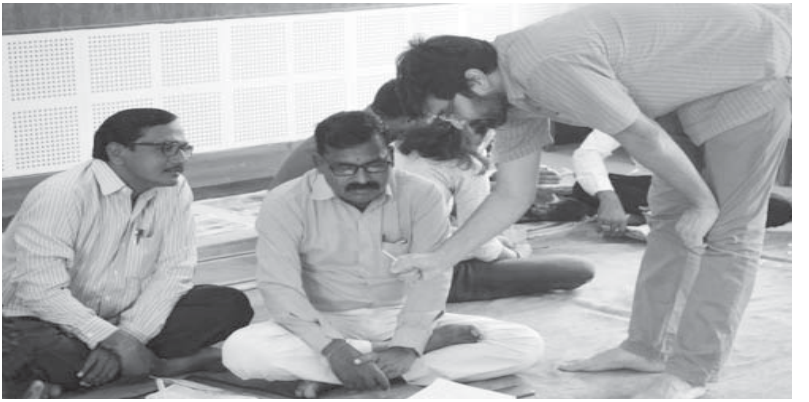

चित्र-3: प्रयोग के लिए शीशी को हथेली में दबाकर पकड़े हुए एक समूह।

हैं, तो वास्तव में होता यह है कि हवा के अणु स्वयं फैल जाते हैं।" लगता है यह व्याख्या शीशी में देखे जा सकने वाले हवा के प्रसार और 'परमाणु सिद्धान्त' के बीच तालमेल बनाने का एक प्रयास है जो कहता है कि 'सारे पदार्थ परमाणुओं से मिलकर बने हैं'। यह 'निरन्तरता' की इस मान्यता से मेल खाता है (Talanquer, 2006 p. 813) कि "पदार्थ को लगातार छोटे-से-छोटे टुकड़ों में विभाजित किया जा सकता है। पदार्थ के ये टुकड़े या कण स्थूल पदार्थ के समान वही गुणात्मक विशेषताएँ दर्शाते हैं... वे गर्म किए जाने पर फैलते हैं और उनका वज़न कम हो जाता है।" इसके अलावा, इसमें 'समानता' के अनुमान के आधार पर कार्य-कारण तर्क विकसित करने का प्रयास भी है: "यदि परमाणुओं और अणुओं के गुणधर्म स्थूल परिघटना का कारण हैं तो इन अदृश्य कणों में हमारे द्वारा प्रेक्षित गुण (रंग, घनत्व, गति वगैरह) भी होने चाहिए" (Talanquer, 2006 p. 814)।

रोचक बात यह है कि शिक्षक ने पदार्थ की जिस सूक्ष्म समझ की बात की, वह छात्रों में भी आम है। हो सकता है कि ऐसी कई वैकल्पिक धारणाएँ और सिद्धान्त हैं जो शिक्षकों व छात्रों के बीच प्रचलित हैं। शिक्षकों को 'सुनना' ऐसे विचारों को सामने ला सकता है, जिन्हें आगे चर्चा, प्रयोग व विचार के लिए उठाया जा सकता है।

हवा के प्रसार को लेकर एक अन्य शिक्षक ने कहा, "**यदि हम गर्मी देते जाएँ तो क्या हवा फैलती ही जाएगी?**" हमें लगता है कि यह कल्पना की एक छलांग थी, जिसमें प्रेक्षित परिस्थिति को आगे बढ़ाने का प्रयास

किया जा रहा था। हमारा मत है कि किसी परिघटना के अप्रेक्षित/सीमान्त व्यवहार के बारे में सोचना गहरी सोच व मनन का द्योतक है। हम इस बात से तो वाकिफ हैं कि किसी आदर्श गैस का ऊष्मीय प्रसार गुणांक तापमान का व्युत्क्रम अनुपाती है, लेकिन हममें से किसी ने भी (मददकर्ताओं में से किसी ने) इस तरह से नहीं सोचा था। हमें लगता है कि ऊष्मा के प्रवाह और परिणामी प्रसार के बारे में यह विचार-मार्ग हमें गहन और सार्थक खोजबीन तथा विचारों की ओर ले जा सकता है।

ऊष्मा स्थानान्तरण की क्रियाविधि पर विचार करते हुए एक अन्य शिक्षक ने कहा, "मैं सोच रहा हूँ कि मेरी हथेली की गर्मी शीशी के अन्दर की हवा तक कैसे पहुँची – चालन से या संवहन से?" और फिर कुछ देर बाद उन्होंने उत्तर भी दिया, "हथेली से शीशी में ऊष्मा चालन से पहुँची होगी क्योंकि हाथ के मुकाबले शीशी कम तापमान पर है। हवा शीशी के सम्पर्क में आती है और गर्म हो जाती है।"

यह दूसरी वाली परिघटना (यानी ऊष्मा का शीशी से अन्दर की हवा तक पहुँचना) संवहन का एक अमानक उदाहरण है। संवहन के पाठ्यपुस्तकीय प्रदर्शन (जो शिक्षकों ने इस प्रयोग से पहले किया था) में बीकर के पेंदे के नीचे ऊष्मा का स्रोत रखा गया था जो पानी में संवहन धाराएँ पैदा कर देता है, जबकि इस उदाहरण में ऊष्मा का स्रोत (हथेलियाँ) शीशी की दीवारों के इर्द-गिर्द है। इसलिए संवहन धाराओं का पैटर्न थोड़ा पेचीदा होगा। शिक्षक ऊष्मा के स्थानान्तरण की विभिन्न विधियों की अपनी समझ को एक पेचीदा परिदृश्य पर लागू करने की

चित्र-4: *प्रयोग के बाद अवलोकनों की चर्चा में व्यस्त एक समूह।*

(क) (ख)

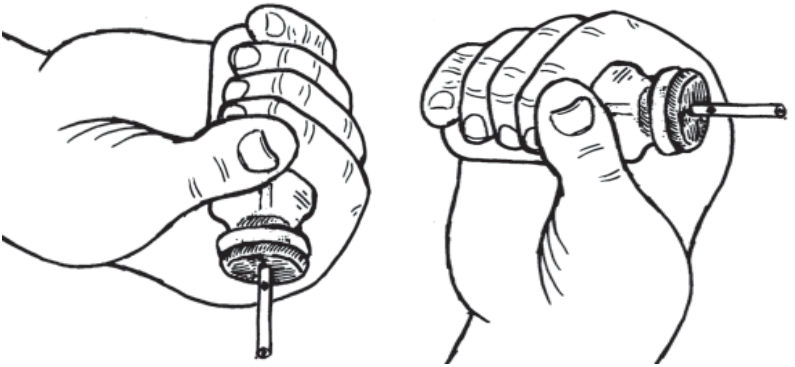

चित्र-5: *हवा के प्रसार के प्रयोग की दो भिन्न व्यवस्थाओं का चित्रात्मक वर्णन।* ***चित्र:*** *बाल वैज्ञानिक।*
(क) उल्टी शीशी (ख) शीशी की लेटी अवस्था।

कोशिश कर रहे थे। हम शिक्षकों के साथ इन बारीकियों पर खोजबीन शुरू कर सकते थे – वैज्ञानिक परिघटनाओं की प्रकृति के एक उदाहरण के रूप में कि वे साफ-सुथरे खण्डों में बँटकर नहीं होतीं।

दूसरी कार्यशाला के एक सत्र में, जो जाड़ों में हुआ था, यह देखा गया कि शीशी को हथेलियों के बीच दबाने के फौरन बाद हवा का प्रसार शुरू नहीं हुआ। एक शिक्षक अपने समूह में चर्चा किए बगैर उठीं, और अपने समूह की शीशी को खिड़की के पास धूप में रख दिया (चित्र-6)। हम सबने उसके बाद हुए प्रसार को देखा। यह शिक्षक का स्वत:स्फूर्त निर्णय था कि ऊष्मा के आसानी-से उपलब्ध स्रोत का उपयोग किया जाए। शिक्षक के इस प्रयोग के बारे में चर्चा करना उपयोगी होता और यह चर्चा करना भी उपयोगी होता कि कैसे यह प्रयोग मददकर्ताओं की योजना से भिन्न था और कैसे इसकी तुलना करके दोनों में अन्तर देखा जा सकता था। एक मददकर्ता ने शीशी को वापिस छाया

चित्र-6

चित्र-7: *गर्म हवा के फैलाव के अवलोकन के एक प्रयोग का चित्रात्मक वर्णन।*

में रख दिया और धीरे-धीरे बूँद वापिस नीचे सरक गई। कुछ लोगों ने चलते-चलते यह भी सोचा कि क्यों गर्म होने पर प्रसार की अपेक्षा ठण्डा होकर संकुचन में अधिक समय लगता है।

शायद यह एक अच्छा मौका था जब विकिरण द्वारा गर्म करने की बारीकियों पर चर्चा और खोजबीन की जा सकती थी, चालन व विकिरण के द्वारा ऊष्मा स्थानान्तरण की गतियों की तुलना की जा सकती थी और ऐसे सवालों पर भी बातचीत हो सकती थी कि क्या हवा सीधे विकिरण से गर्म हो जाती है या क्या शीशी विकिरण से गर्म होती है और फिर अन्दर की हवा को यह ऊष्मा देती है, या क्या इन दोनों का मिला-जुला असर होता है।

एक अन्य सत्र में हममें से किसी एक ने दो शिक्षकों के बीच का यह वार्तालाप सुना: "शीशी को ज़्यादा ज़ोर-से मत दबाओ, टूट सकती है।" "नहीं-नहीं, मैं कसकर पकड़ूँगा तो सम्पर्क बेहतर होगा।" यह टिप्पणी शायद गर्मी से सम्पर्क के रोज़मर्रा अनुभव से उभरी थी (जैसे सिकाई या बर्फ की सिकाई जैसे अनुभव), और इस पर चर्चा शायद ऊष्मा के प्रवाह की क्रियाविधि पर विस्तार में बातचीत करने का मौका देती। जैसे प्रवाह में सम्पर्क के क्षेत्रफल का असर। हमें लगता है कि सम्भवत: हम समूहों में व्यक्त ऐसे कई विचारों को चूक गए। ये ऐसे विचार थे जिन्हें शायद लोगों ने सबके सामने व्यक्त करने लायक नहीं माना।

शीशी को हथेली में पकड़ने पर बूँद के ऊपर की ओर सरकने को समझाते हुए, एक शिक्षक ने यह व्याख्या दी: "गर्म हवा हल्की होती है, इसलिए वह ऊपर उठती है।" हमारे साथी उमेश चौहान ने शिक्षकों को एक उल्टा प्रयोग करके दिखाया – शीशी को उल्टा पकड़कर यह देखना कि बूँद नीचे की ओर जाती है, शीशी से दूर जाती है (चित्र-5 'क')। यह इस दावे का प्रमाण था कि शीशी के अन्दर की सारी हवा फैलती है,

चित्र-8: संकुचन की प्रक्रिया को दर्शाता प्रयोग।

लेकिन हमारे पास इस प्रयोग की चर्चा के लिए समय नहीं था। तो हमें पक्का नहीं मालूम कि शिक्षकों ने इस व्याख्या के बारे में क्या सोचा।

कुछ शिक्षकों ने शीशी को लिटाकर रखा और प्रयोग को दोहराया, जो गुरुत्वाकर्षण के असर को निरस्त करने का प्रयास था (चित्र-6 'ख')। उन्होंने देखा कि बूँद इस स्थिति में भी सरकती है।

यह एक उदाहरण है जब शिक्षकों ने प्रयोग को विस्तार दिया ताकि गुरुत्वाकर्षण और तपाने के प्रभावों को अलग-अलग कर सकें और हममें से एक ने इसे शिक्षकों के एक समूह में देखा था। अलबत्ता, हम इसे पूरी कक्षा के सामने लाने का अवसर चूक गए, जिससे इस परिघटना की ज़्यादा विस्तृत समझ व चर्चा नहीं हो पाई। यह भी सम्भव है कि अन्य समूहों में भी शिक्षकों ने अपने तर्कों की जाँच करने के लिए प्रयोग में विभिन्न संशोधन किए होंगे लेकिन शायद उन्होंने इन्हें इतना महत्वपूर्ण नहीं माना कि सबके साथ साझा करें (या शायद हमारे रवैये ने यह भावना पैदा की कि उनके विचारों का कोई महत्व नहीं है)।

प्रयोग के विस्तार के तौर पर, हमने ठण्डा होने पर संकुचन का एक प्रयोग और किया। हमने शिक्षकों से कहा कि वे अब उस शीशी (जिसमें हवा कमरे से थोड़े अधिक तापमान पर थी) को पानी भरे एक मग में डुबा दें (पानी एक बाल्टी में से लिया गया था जिसमें 'सादा' पानी था क्योंकि बाल्टी को सुबह ही नल के पानी से भरा गया था और वह कमरे में रखी थी) (चित्र-8)। सारे समूहों ने देखा कि रंगीन बूँद उल्टी दिशा में गति करती है जिससे पता चलता है कि हवा हमारी हथेली में से हटाकर रखे जाने के बाद ठण्डी होकर सिकुड़ती है।

एक शिक्षक का अवलोकन था कि

चित्र-9: *एक अन्य सत्र में संकुचन की प्रक्रिया को दर्शाता प्रयोग।*

रीफिल में वह बूँद उस जगह से भी नीचे जाकर रुकती है जहाँ वह प्रयोग के शुरू में थी। किसी ने टिप्पणी की कि इसका मतलब है कि बाल्टी के 'सादे' पानी का तापमान कमरे के तापमान से कुछ कम था। यह एक नई बात थी क्योंकि लगभग हम सभी इस धारणा को मानते थे कि 'कमरे' में रखी सारी चीज़ें कमरे के तापमान पर होती हैं। यह चर्चा इसके कारण पर अच्छी खोजबीन का रूप ले सकती थी, या इस बात पर विचार हो सकता था कि विभिन्न चीज़ों को 24 घण्टे गर्म या ठण्डा करने पर क्या होगा और उसकी क्रियाविधि क्या होगी।

पानी मिलाने पर खयाली प्रयोग

हमारे साथी कमल महेंद्रू ने शिक्षकों के समक्ष पानी मिलाने को लेकर खयाली प्रयोग पेश किए। ये साहित्य में वर्णित प्रयोगों के संशोधित/विस्तारित रूप थे (Driver, Guesne, & Tiberghien,1985, p. 62)। और इनका सम्बन्ध तापमान और ऊष्मा के बीच अन्तर से था।

एक प्रयोग इस तरह था: "हमारे पास दो बर्तन हैं जिनमें प्रत्येक में 20 डिग्री सेल्सियस पर एक-एक लीटर पानी है। यदि हम इन दोनों को मिला दें तो मिश्रण का अन्तिम तापमान और ऊष्मा की मात्रा क्या होगी?"

अधिकांश शिक्षकों ने कहा कि तापमान तो वही रहेगा। कुछ शिक्षकों ने यकीन से कहा कि उनके छात्र कहेंगे कि अन्तिम तापमान 40 डिग्री सेल्सियस होगा क्योंकि किसी भी इबारती सवाल में वे संख्याओं को जोड़ने के आदी हैं। इस परिणाम को लेकर स्टेवी और बर्कोविट्ज़ (1980) के शोध ने दर्शाया है कि कैसे छात्र इस परिघटना को समझने के

चित्र-10

लिए अपनी 'गुणात्मक/सहज/मौखिक' समझ और 'मात्रात्मक/संख्यात्मक' समझ का तालमेल बनाने की कोशिश करते हैं।

शिक्षकों ने सुझाया कि छात्रों को इस उत्तर की दिक्कत समझने में मदद के तीन तरीके हैं –

1. छात्रों से वास्तव में पानी को छूकर देखने को कहा जाए कि क्या मिलाने के बाद वह अधिक गर्म लगता है।
2. तापमापी का उपयोग।
3. उनके सामने एक विपरीत-उदाहरण प्रस्तुत किया जाए: यदि हम गर्म पानी और ठण्डा पानी मिलाते हैं तो हमें गुनगुना पानी मिलता है। ऐसा तो नहीं है कि दो बर्तन में ठण्डा पानी मिलाएँ तो गर्म पानी मिल जाए।

स्टेवी और बर्कोविट्ज़ (1980) ने इस और अन्य सम्बन्धित परिदृश्यों में संज्ञानात्मक टकराव के उपयोग की प्रभाविता की बारीकियों पर चर्चा की है। तो शिक्षक न सिर्फ अपनी धारणाएँ बता रहे थे बल्कि इस बात पर भी विचार कर रहे थे कि उनके छात्र इन सवालों के बारे में किस तरह सोचेंगे और किस तरह के जवाब देंगे। यानी अवधारणा के साथ उनकी जद्दोजहद कई स्तरों पर थी।

खयाली प्रयोग के दूसरे हिस्से 'पानी को मिलाने के बाद मिश्रण में कुल कितनी ऊष्मा होगी', के सन्दर्भ में हमने शिक्षकों से मिश्रण में ऊष्मा की मात्रा की तुलना X से करने को कहा, जहाँ X दोनों में से किसी एक पानी (20 डिग्री सेल्सियस पर) में ऊष्मा की मात्रा है - क्या यह X के बराबर, उससे कम या उससे ज़्यादा होगी? ऐसा लग रहा था कि शिक्षक आश्वस्त हैं कि मिलाने के बाद दो लीटर पानी में ऊष्मा की मात्रा X के बराबर होगी; कम-से-कम शिक्षकों के बहुमत ने इस धारणा का समर्थन

किया। कुछ लोग अनिश्चय के चलते खामोश रहे। अपने उत्तर की व्याख्या करने को कहे जाने पर, कुछ शिक्षकों ने कहा कि तापमान के समान ही ऊष्मा भी नहीं जुड़ेगी और उतनी ही रहेगी – यानी समान तापमान पर दो लीटर पानी की ऊष्मा एक लीटर पानी के बराबर ही होगी।

हमने इस निष्कर्ष को समस्याग्रस्त बनाने के लिए एक परोक्ष उदाहरण का सहारा लिया। उनके सामने यह स्थिति प्रस्तुत की – मान लीजिए, आप रोज़ाना 10 लीटर पानी (जो कमरे के तापमान पर है) को गैस के चूल्हे पर गर्म करते हैं ताकि वह स्नान के लायक हो जाए। एक दिन आपके यहाँ मेहमान आ जाता है और आपको 20 लीटर पानी गर्म करना पड़ता है। इसके बाद हमने दो सवाल रखे – किस मामले में पानी को गर्म होने में ज़्यादा समय लगेगा? तो किस मामले में आपको ज़्यादा ऊष्मा प्रदान करनी होगी? कई शिक्षकों ने कहा कि 10 लीटर और 20 लीटर, दोनों एक ही अन्तिम तापमान पर ज़रूर हैं लेकिन बीस लीटर को हमने ज़्यादा ऊष्मा दी है। दूसरा सवाल एक मायने में उत्तर की ओर धकेलने वाला सवाल था ताकि शिक्षकों को जल्दी-से मंज़िल तक पहुँचाया जा सके। हमें लगता है कि हालाँकि इसने हमें सत्र के लक्ष्य को हासिल करने में मदद की लेकिन शिक्षकों को ऊष्मा तथा ऊष्मा व तापमान के फर्क पर विचार करने तथा अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाया। इस सन्दर्भ में हम नहीं कह सकते कि क्या शिक्षक इस बात का कुछ अन्दाज़ लगा पाए कि ऊष्मा एक ऊर्जा है।

इस बिन्दु पर आकर अधिकांश लोग खयाली प्रयोग में ऊष्मा की मात्रा को लेकर अपने पूर्व-निष्कर्षों पर सवाल उठाने लगे थे। अब समूह में लगभग आम सहमति थी कि 2 लीटर पानी में ऊष्मा की मात्रा X से ज़्यादा होगी (कुछ लोगों का कहना था कि यह 2X होगी)। इस समय एक शिक्षक, जिन्होंने अब तक चर्चा में शिरकत नहीं की थी, ने कहा कि "आम तौर पर जब हम ऊष्मा की बात करते हैं, तो हम किसी वस्तु को ऊष्मा देने या उससे ऊष्मा लेने की बात करते हैं। हम किसी वस्तु में ऊष्मा की मात्रा की बात शायद ही कभी करते हों।"

हमने सबके सामने स्वीकार किया कि यह इस सम्बन्ध में एक सूझबूझ से भरी टिप्पणी है कि मिडिल स्कूल विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में ऊष्मा की अवधारणा को किस तरह पढ़ाया जाता है। ऊष्मा प्रदान करने या निकालने के दौरान इसे मात्रात्मक ढंग से समझा जाता है (उस सूत्र में जहाँ विशिष्ट ऊष्मा और तापमान में परिवर्तन शामिल होते हैं), जबकि ऊष्मा को अपने-आप में अवधारणा के रूप में समझाते हुए गुणात्मक विवरण

चित्र-11: *तापमान और ऊष्मा से सम्बन्धित एक खयाली प्रयोग।*

दिया जाता है ('सारे अणुओं की कुल गतिज ऊर्जा')। यह बात सत्र के अन्त में आई थी, इसलिए हम चर्चा को ज़्यादा आगे नहीं ले जा पाए। सिर्फ यह ज़िक्र किया गया कि तापमान का एक परम शून्य होता है और साथ ही, किसी वस्तु के तापमान को परम शून्य से किसी एक निश्चित तापमान (जैसे कमरे के तापमान) तक बढ़ाने (जिस दौरान शायद अवस्था परिवर्तन भी होगा) के लिए दी गई कुल ऊष्मा पर विचार किया गया।

शिक्षकों के अन्य समूह के साथ एक अन्य कार्यशाला में, हमने उपरोक्त खयाली प्रयोग का थोड़ा परिवर्तित रूप प्रस्तुत किया था। यह इस प्रकार था: "हमारे पास दो पात्र हैं जिनमें एक-एक लीटर पानी भरा है। एक का तापमान 20 डिग्री सेल्सियस और दूसरे का 40 डिग्री सेल्सियस है। दोनों पात्रों में ऊष्मा की मात्रा किसी इकाई में क्रमशः X और Y मानी जा सकती है (चित्र-11)। यदि हम इन दोनों पानी को मिला दें, तो मिश्रण का तापमान और ऊष्मा की मात्रा कितनी होगी?"

सारे शिक्षक समूहों ने कहा कि तापमान 30 डिग्री होगा, जबकि कुछ शिक्षकों का कहना था कि तापमान ठीक-ठीक 30 डिग्री नहीं होगा बल्कि थोड़ा कम होगा (क्योंकि उन्हें लगा कि कुछ ऊष्मा मिलाने की प्रक्रिया में खो जाएगी)। अधिकांश लोगों ने माना कि दूसरे पात्र में ऊष्मा की मात्रा Y पहले पात्र की ऊष्मा की मात्रा X की तुलना में अधिक है। अलबत्ता, मिश्रण में ऊष्मा की मात्रा को लेकर कोई स्पष्ट जवाब नहीं मिला। हमने तीन स्थितियाँ सामने रखीं और पूछा कि इनमें से कौन-सी सही है –

- मिश्रण के उपरान्त दो लीटर पानी की ऊष्मा X से कम होगी,
- X और Y के बीच होगी, या
- Y से अधिक होगी।

यहाँ भी तर्क का सिलसिला पिछले वाले खयाली प्रयोग के समान ही चला और लोगों ने 'X और Y के बीच' वाला विकल्प चुना। उनका कहना था कि यह भी तापमान जैसा ही होना चाहिए। हमने उनसे पूछा कि यदि तापमान और ऊष्मा, दोनों एक ही बात हैं, तो इनके बीच अन्तर क्या है या हमें दो अलग-अलग शब्दों की ज़रूरत क्या है। तरह-तरह के उत्तर मिले। पाठ्यपुस्तकों की यह परिभाषा दोहराई गई कि इनकी इकाइयाँ अलग-अलग हैं, यह भी कहा गया कि एक कारण है और दूसरा उसका प्रभाव है (हालाँकि इस बात को लेकर विवाद रहा कि कारण कौन-सा है और प्रभाव कौन-सा)। इस चर्चा के बाद, मामले को सुलझाने के लिए, हमारे एक साथी ने एक और खयाली प्रयोग प्रस्तुत किया: "एक पात्र में 20 डिग्री सेल्सियस पर एक लीटर पानी है और एक अन्य पात्र में उसी तापमान पर एक हज़ार लीटर पानी है। प्रत्येक पात्र में ऊष्मा की मात्रा कितनी है?" इस पर शिक्षकों ने वही जवाब दिया कि दोनों में बराबर ऊष्मा (जैसे X कैलोरी) है।

इस बिन्दु पर हमने शिक्षकों से निम्नलिखित परिदृश्य पर विचार करने को कहा – "मान लीजिए हम 1000 लीटर में से एक लीटर पानी ले लेते हैं। यदि दोनों में ऊष्मा की मात्रा X है तो क्या बचे हुए 999 लीटर में ऊष्मा की मात्रा शून्य रह जाएगी? यदि ऐसा नहीं है, तो क्या हम एक-एक लीटर पानी निकालते जा सकते हैं और X कैलोरी ऊष्मा पैदा करते जा सकते हैं?" इस उदाहरण ने थोड़ा मतभेद उत्पन्न किया। एक शिक्षक ने कहा, "ऊष्मा एक किस्म की ऊर्जा है।" इसे हमने व्हाइटबोर्ड पर लिख दिया। इसके बाद, शिक्षकों ने 'ऊष्मा ऊर्जा का एक रूप है' के विचार की रोशनी में ऊष्मा की मात्रा को कई अलग-अलग तरह से निरूपित करने की कोशिश की। इस पड़ाव पर हमें उपयोगी लगा कि पाठ्यपुस्तक में दिया गया विवरण लिख दें:

ऊष्मा और तापमान में क्या अन्तर है? हम जानते हैं कि कोई भी पदार्थ परमाणुओं से मिलकर बना होता है। पदार्थ के परमाणु सदा गति में रहते हैं। किसी पदार्थ में परमाणुओं की कुल गतिज ऊर्जा उसमें ऊष्मा की मात्रा का माप है, जबकि तापमान का सम्बन्ध परमाणुओं की औसत गतिज ऊर्जा से है।

इस बिन्दु पर एक शिक्षक ने यह अन्तर बच्चों को समझाने के लिए एक रूपक बनाया –

मान लो 10 बच्चों की एक कक्षा में प्रत्येक बच्चे के पास 20-20 चॉकलेट

हैं। तो कक्षा में कुल 200 चॉकलेट हुईं। 10 बच्चों की एक अन्य कक्षा में प्रत्येक के पास 40 चॉकलेट हैं, तो उस कक्षा में कुल 400 चॉकलेट हुईं। अब हम दोनों कक्षा के बच्चों को एक साथ बिठा देते हैं और उनसे कहते हैं कि सारी चॉकलेट मेज़ पर रख दें। इसके बाद हम सारी चॉकलेट 20 बच्चों में बराबर-बराबर बाँट देते हैं। चॉकलेटों की कुल संख्या (600) ऊष्मा की मात्रा की द्योतक है जबकि प्रति छात्र चॉकलेटों की संख्या (30) तापमान दर्शाती है।

जब हमने यह रूपक अपने कुछ साथियों को बताया, तो उनमें से एक ने शिक्षक द्वारा चॉकलेट की उपमा के उपयोग को खारिज करते हुए कहा कि यह तापमान का एक गलत व अधूरा चित्र पेश करती है और ऊष्मा तथा तापमान को लेकर, उनकी इकाइयों को लेकर गलतफहमी पैदा करती है। हालाँकि, उनका कहना सही है, लेकिन हमें लगता है कि शिक्षक द्वारा समझने तथा तत्काल एक रूपक तैयार करने की बात 'अद्‌भुत विचार' का एक उदाहरण है (Duckworth, 1996 की तर्ज़ पर)। यह शिक्षक के चिन्तन व गहरे जुड़ाव को भी दर्शाता है। हमें लगता है कि 'प्रति बच्चा चॉकलेट' का रूपक यह विचार उभारता है कि तापमान 'ऊष्मा की तीव्रता' है (जैसा कि एक शिक्षक ने कहा) या जैसा कि उनकी पाठ्यपुस्तक कहती है, 'परमाणुओं की औसत गतिज ऊर्जा से सम्बन्धित है।' हमारा मत है कि इस विचार की अवधारणात्मक समझ विकसित करने के लिए और बातचीत की ज़रूरत होगी।

शिक्षकों को समझाते हुए सुनना

इस पर्चे के शुरू में डकवर्थ के निबन्ध का जो अंश दिया गया है, उसमें यह कहा गया है कि सीखने

वालों को परिघटना के साथ सीधे अन्तर्क्रिया का अवसर मिलना चाहिए और उसके बाद उन्हें यह समझाने का मौका मिलना चाहिए कि उन्होंने चीज़ों को कैसे समझा। ये दो शिक्षण के केन्द्रीय तत्व हैं। हम मानते हैं कि हालाँकि हमने अपने काम की शुरुआत इन मापदण्डों की पूर्ति के लिहाज़ से कहकर नहीं की थी, लेकिन ये हमारे सत्रों की डिज़ाइन व योजना के लिए प्रासंगिक रहे। शिक्षकों के जिन समृद्ध विचारों से हमारा सामना हुआ, उनके सन्दर्भ में हम उन्हें सुनने के समय के लिहाज़ से और उनके साथ वार्तालाप के लिहाज़ से न्याय नहीं कर पाए और न ही उन्हें पर्याप्त मौका दे पाए कि वे अपने अर्थ-निर्माण को विस्तार में समझा सकें। हमारी यह समझ (मददकर्ताओं के तौर पर), जो थोड़ी धुँधली-सी थी, मन्थन करते हुए, इस पर्चे को लिखते हुए तथा इन मुद्दों के बारे में पढ़ते हुए ज़्यादा स्पष्ट होती गई।

सीखने वालों को समझाने का मौका देने की वकालत करते हुए, डकवर्थ सीखने-सिखाने के तरीकों के इन परिणामों की बात करती हैं (Duckworth, 1996 p. 182-183):

"सबसे पहले, अपने विचार अन्य लोगों को स्पष्ट करते हुए, छात्र स्वयं ज़्यादा स्पष्टता हासिल करते हैं। अधिकांश सीखना तो व्याख्या करने में होता है। दूसरा, छात्र स्वयं तय करते हैं कि वह क्या चीज़ है जिसे वे समझना चाहते हैं। न सिर्फ व्याख्या उनकी तरफ से आती है बल्कि सवाल भी उन्हीं के होते हैं। तीसरा, लोग आत्मनिर्भर होने लगते हैं। वे इस बात के निर्णयकर्ता होते हैं कि वे क्या जानते और मानते हैं। चौथा, छात्रों को अपने विचारों को गम्भीरता से लिए जाने का सशक्त अनुभव मिलता है। उनका मूल्यांकन सिर्फ उस चीज़ के लिए नहीं होता जो शिक्षक चाहते हैं। पाँचवा, छात्र एक-दूसरे से बहुत कुछ सीखते हैं। और अन्तिम, कि सीखने वाले ज्ञान को एक मानवीय रचना के रूप में पहचानने लगते हैं क्योंकि वे अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करते हैं और वे जानते हैं कि उन्होंने ही किया है। किताब में जो कुछ लिखा होता है, उसे किसी और की रचना माना जाता है, एक ऐसी रचना जो उसी तरह उत्पन्न होती है जैसे उनकी अपनी रचना। इसकी उत्पत्ति किसी अन्य स्तर से नहीं हुई है।"

सत्रों में शिक्षकों द्वारा व्यक्त सोच और विचारों में से आगे की चर्चा और खोजबीन में उपरोक्त सार में प्रस्तुत परिणामों को साकार करने की सम्भावना है। अन्तिम बिन्दु का सम्बन्ध विज्ञान की प्रकृति से है, सिर्फ ज्ञान के भण्डार के रूप में नहीं बल्कि मानवीय खोजबीन की एक प्रक्रिया के रूप में जो लगातार चलता हुआ काम है। यह आधिकारिक व्यक्तियों द्वारा

हस्तान्तरित ज्ञान नहीं है बल्कि लोगों द्वारा भौतिक और सामाजिक परिघटनाओं के साथ गहरे जुड़ाव के ज़रिए निर्मित ज्ञान है (Rose, 2006, p. 143; Singh, Shaikh & Haydock, 2019)। जो शिक्षक सबके सामने बोलने में सहज महसूस नहीं कर रहे थे, उन्हें मौका था कि वे अपने समूह के सदस्यों के साथ चर्चा कर सकें, और हमने सत्रों के दौरान उनके समझाने व सीखने की झलकें देखीं। लेकिन आगे बढ़ने के हमारे आग्रह और शिक्षकों के विचारों को पूरी तरह सुनने के लिए न रुकने ने यह सन्देश दे दिया था कि उनके विचार महत्वपूर्ण नहीं हैं या हम शायद पाठ्यपुस्तक, विशेषज्ञों की आधिकारिक हैसियत जैसी धारणा को पुष्ट कर रहे थे। **जब तक हम शिक्षकों के विचार नहीं सुनते, जब तक उन्हें नहीं लगता है कि उनके विचार महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं, तब तक अध्यापकों के रूप में हम उनसे कोई सार्थक संवाद नहीं बना सकते।**

हमें लगता है कि यदि इन सत्रों में हम शिक्षकों के लिए एक ऐसा माहौल बना पाते जहाँ वे स्वयं अपने और अन्य के विचारों को गम्भीरतपूर्वक ले पाते, तो शायद स्कूल में वे अपने छात्रों के साथ भी ऐसा करते। जब तक खुद शिक्षकों को खोजबीन की प्रक्रिया में जुटने तथा उसे सराहने का मौका नहीं मिलता, तब तक वे अपने छात्रों को भी इसका अनुभव कराने में असमर्थ रहेंगे। इसका मतलब होगा कि हम सत्र की योजना में काफी समय शिक्षकों द्वारा उनके अपने विचार समझाने के लिए, उनके साथ और काम करने के लिए रखें एवं 'गहराई व विस्तार की खातिर समापन को थोड़ा धीमा करें' (Duckworth, 1996 p. 76)।

शिक्षक-अध्यापकों तथा शिक्षकों के लिए यह पहचानना ज़रूरी है कि कार्यशाला के सत्र 'अवधारणाओं को स्पष्ट' या 'विषयवस्तु को पूरा' करने वाले नहीं हैं। हमें ज्ञान के निर्माण तथा सीखने-सिखाने के तरीके में सुधार, दोनों को सतत चलती हुई प्रक्रियाओं के रूप में देखना चाहिए। इसका आशय है कि कार्यशाला सहभागी के रूप में शिक्षकों को, ज्ञान के निर्माण की धारणाओं की ओर बढ़ने (जिनका लोगों के सीखने के तरीकों से ज़्यादा सामंजस्य है) के अलावा ज़्यादा स्वायत्तता व ज़िम्मेदारी दी जाए। इसके अलावा, शिक्षकों को सोचने के लिए तथा इन प्रक्रियाओं पर काम जारी रखने के लिए समय व मदद की ज़रूरत होती है (Rodgers, 2001)।

पाठ्यपुस्तकों और ब्लैकबोर्ड से शिक्षण या वैज्ञानिक अवधारणाओं के ऐतिहासिक विकास के बारे में पढ़ना, सीखने का महत्वपूर्ण हिस्सा है। अलबत्ता, 'विचारों को एक-दूसरे के सम्बन्ध में रखना' (Duckworth, 1996,

p. 81) और 'विषयवस्तु को अच्छी तरह से समझ जाना..., उसके अन्दर कड़ियों के ताने-बाने और विषयवस्तु के एक क्षेत्र और दूसरे क्षेत्र के बीच सम्बन्धों के प्रति सचेत होना' (Rodgers, 2001, p. 479) वह काम है जिसे धैर्य और आनन्द से किया जाना है। हम मानते हैं कि मूल्यांकन के मापदण्ड, शिक्षक व छात्रों की स्वायत्तता, सार्वजनिक शिक्षा को लेकर सरकारी नीतियाँ, अच्छी शिक्षा तक पहुँच में समता (NCERT, 2005) जैसे तंत्रगत मुद्दों को सुलझाना एक ऐसी लड़ाई है जिसे शिक्षकों को उनके कामकाज में स्वायत्तता में मदद के साथ-साथ लड़ा जा सकता है।

अनीश मोकाशी: स्कूल और विश्वविद्यालय स्तर पर विज्ञान शिक्षण में कार्यरत हैं। विज्ञान के इतिहास, शिक्षण-सीखने की संस्कृतियाँ, छात्रों के विचारों और उनसे जुड़े गरिमा के मामलों और करने-सोचने के बीच सम्बन्ध को समझने में रुचि रखते हैं।

गुरिंदर सिंह: वर्तमान में एक गैर-सरकारी संगठन में विज्ञान शिक्षण में कार्यरत हैं। शिक्षक और विद्यार्थियों के सवालों सम्बन्धी विज्ञान शिक्षण और विज्ञान शिक्षा अनुसंधान में विशेष रुचि।

हनी सिंह: शिक्षक और शोधकर्ता हैं। विशेष रूप से सीखने की प्रक्रियाओं, शिक्षक शिक्षा और विज्ञान शिक्षा में रुचि। वर्तमान में एक संगठन के साथ कौशल और सेल्फ लर्निंग एटीट्यूड पर कार्यरत हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी फोटो: मोहित वर्मा: *एकलव्य* से सम्बद्ध हैं।

यह पेपर इंटरनेशनल कॉन्फेरेंस टु रिव्यु रिसर्च इन साइंस, टेक्नोलॉजी एंड मेथेमेटिक्स एजुकेशन, जनवरी 3-6, 2020 में प्रस्तुत किया गया था।

सन्दर्भ:

- Driver, R., Guesne, E., Tiberghien, A (Eds.) (1985). Children's ideas in science. Buckingham, England: Open University Press.
- Duckworth, E. (1996). The having of wonderful ideas and other essays. New York, NY: Teachers College Press.
- National Council of Educational Research and Training (NCERT) (2005). NCF 2005- Position paper on Teaching of Science. New Delhi: NCERT.
- Rodgers, C. R. (2001). Review: "It's elementary": The central role of subject matter in learning, teaching, and learning to teach. American Journal of Education, 109(4), 472-480.
- Rose, C. (2006). The Charlie Rose show. In T. Head (Ed.), Conversations with Carl Sagan, (pp. 141-150). Jackson, Mississippi: University Press of Mississippi.
- Singh, G., Shaikh, R., & Haydock, K. (2019). Understanding student questioning. Cultural Studies of Science Education, 14(3), 643–697.
- Stavy, R. & Berkovitz, B. (1980). Cognitive conflict as a basis for teaching quantitative aspects of the concept of temperature. Science Education 64(5): 679-692.
- Talanquer, V. (2006). Commonsense Chemistry: A model for understanding students' alternative conceptions. Journal of Chemical Education, 83(5),
- 811-816.Unterhalter, E., McCowan, T. & Rampal, A. (2015). Conclusion: An interview with Anita Rampal. In T. McCowan & E. Unterhalter (Eds.), Education and international development: An introduction (pp. 297-306). London, UK: Bloomsbury.

मुश्किल नहीं है बच्चों को गिनती सिखाना

कालू राम शर्मा

बच्चे जैसे ही प्रारम्भिक कक्षाओं में स्कूल में भर्ती होते हैं वैसे ही गिनती सिखाने की जद्दोजहद शुरू हो जाती है। गिनती को बोर्ड पर लिखा जाता है और बच्चों को उसे दोहराने के लिए कहा जाता है। शिक्षक की अपेक्षा होती है कि बच्चे रट लें और फर्राटे से गिनती बोल सकें। इसके लिए गिनती के कुछ गीत भी आजकल व्हॉट्सएप पर खूब प्रसारित होते हुए मिल जाएँगे। कुछ बच्चे गिनती फर्राटे से बोल पाते हैं और उन्हें मिलती है शाबाशी। और जो बच्चे फर्राटे से नहीं बोल पाते, वे हिकारत भरी नज़रों के शिकार बन जाते हैं।

पट्टी-पहाड़ा नामक एक पतली-सी किताब होती है, उसमें से देखकर बच्चों को गिनती लिखने को कहा जाता है। यह प्रक्रिया अधितकर स्कूलों की प्राथमिक कक्षाओं में दिन-दर-दिन ही नहीं, महीनों-दर-महीनों चलती रहती है। इन सबके बावजूद बच्चे गिनती की पर्याप्त समझ नहीं बना पाते। जब बच्चे आगे की कक्षाओं में जाते हैं तो इस समस्या से जूझना शिक्षक की मजबूरी बन जाती है।

समस्या तब आती है जब आप बच्चों से कुछ गिनने को कहते हैं और वे गिन नहीं पाते। यहाँ गिनने से आशय है कि वे चीज़ों को गिनते हुए एक-एक चीज़ को उठाते हैं और अलग रखते जाते हैं लेकिन वे संख्या नाम भूल जाते हैं। जैसे कि चौंतीस के बाद वे छत्तीस या बयालीस बोलते हैं। और फिर गिनना रुक जाता है।

बच्चों के साथ काम करते हुए जब मैंने उनसे बासठ लिखने का बोला तो उन्होंने बहत्तर लिख दिया। या जब उनसे पूछा गया कि तैंतीस के बाद

क्या आएगा तो वे अपेक्षित जवाब नहीं दे पाए।

कुल मिलाकर बच्चों के साथ शिक्षक मेहनत तो खूब करते हैं लेकिन बच्चे फिर भी अपेक्षित नहीं सीख पाते। ऐसे में शिक्षक बच्चों को लेकर धारणाएँ बनाने लगते हैं। जैसे घर पर माता-पिता बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान नहीं देते, ये बच्चे तो ऐसे ही हैं, सीखने में कोई दिलचस्पी ही नहीं है इनमें। शिक्षकों को तो निराशा हाथ लगती ही है, साथ ही बच्चों के ज़हन में भी यह बात बिठा दी जाती है कि गिनती एक कठिन चीज़ है।

कक्षा पहली में आने वाले बच्चे के साथ पूरे सत्र के दौरान गिनती पर काम करने पर भी वह समझ नहीं पाता तो यह बच्चे की अक्षमता है या सिखाने की प्रक्रिया में खामी का परिणाम?

मेरा अनुभव है कि बच्चों को गिनती का भान होता है। जैसे कि एक ढाई साल की बच्ची दो और तीन चॉकोबार में से तीन वाले समूह को हथियाना चाहती है। जब ढाई बरस की बच्ची को स्कूटी पर एक अन्य सदस्य उसके पीछे बिठाकर कहीं ले जाता है तो वह कहती है कि अब जगह नहीं है। उसे यह भान होता है कि स्कूटी पर अधिक-से-अधिक तीन ही बैठ सकते हैं।

ऐसे तमाम उदाहरण आप खोज सकते हैं जिनसे समझा जा सकता है कि बच्चे गिनती की समझ रखते हैं। बच्चों में यह क्षमता नैसर्गिक होती है जिसे वे अपने परिवेश से अन्तःक्रिया करते हुए तराशते जाते हैं।

वैसे प्रयोगों से पता चलता है कि जीवजगत में कौए भी तीन तक की गिनती कर पाते हैं। अगर गैर-मानव

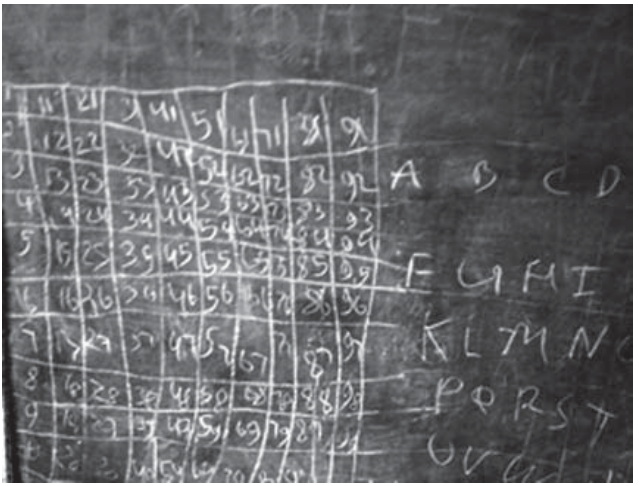

स्तनधारियों की बात की जाए तो चिम्पांज़ी एवं गोरिल्ला में भी गिनने की क्षमता के प्रमाण मिलते हैं। तो सवाल यह है कि बच्चों को स्कूल में गिनती सीखने में इतनी दिक्कत क्यों आती है?

गिनने की समस्या

मैंने पिछले सालों में शिक्षकों के साथ गिनती पर काम किया तो पाया कि पहले वे बच्चों को गिनती रटवाना प्रारम्भ करते हैं और जल्द ही, उन्हें गिनती लिखवाने लगते हैं। यह लिखना बोर्ड या किताब के सहारे होता है। बच्चे गिनती की नकल करते रहते हैं। फिर अगले चरण में बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि वे फर्राटे से गिनती बोल सकें और किताब या बोर्ड पर देखे बिना गिनती लिख सकें।

1	11	21	31
2	12	22	32
3	13	23	33
4	14	24	34
5	15	25	35
6	16	26	36
7	17	27	37
8	18	28	38
9	19	29	39
10	20	30	40

मैंने कक्षाओं में देखा है कि बच्चे मंत्र या कथा की भाँति फर्राटे से गिनती बोलते हैं और किसी निश्चित संख्या तक पहुँचकर ही दम लेते हैं। अगर बीच में उन्हें रोक दिया जाए तो वे फिर से शुरुआत कर देते हैं। बीच में रोकने पर आगे न बोल पाना दर्शाता है कि बच्चों में संज्ञानात्मक स्तर पर गिनती की समझ नहीं बन पाई है। इसी प्रकार से जब बच्चों को गिनती को एक तयशुदा फॉर्मेट में लिखने को कहा जाता है तो वे लिख तो पाते हैं लेकिन यह कतई ज़रूरी नहीं है कि गिनती के बारे में उनकी समझ बन गई हो। अक्सर बच्चे कॉपी या स्लेट पर एक कॉलम बनाकर एक से दस तक की संख्या लिखते हैं। अगले कॉलम में वे 11 से 20 तक लिखते हैं। और फिर आगे 21 से 30 तक...। उन्हें यह भान होता है कि कॉलम में यांत्रिक तौर पर क्या भरना है।

इसमें वे एक खास बात को पकड़ लेते हैं कि जब अगली लाइन में लिखना है तो बाईं ओर 1 लिख दिया जाए और फिर पहले खाने के मुताबिक दाईं ओर 1 से 9 तक लिख दिया जाए। कई बार मैंने देखा कि जब 20 लिखने की बारी आती है तो वे गफलत में पड़ जाते हैं।

जब मैंने उपरोक्त प्रक्रिया से गुज़रे बच्चे से पूछा कि 26 कहाँ लिखा है

तो वह बता नहीं पाया। यह मैं उस बच्चे की बात कर रहा हूँ जो फर्राटे से गिनती बोलता है और उसने कई दफे अपनी स्लेट व कॉपी में गिनती की नकल की है और उसे शिक्षक की ओर से 'गुड' मिला है।

गिनती क्यों?

इस पूरे मामले में मैंने शिक्षकों से बातचीत की कि इस स्थिति से कैसे निपटा जाए। मेहनत तो काफी हो रही है लेकिन अगर बच्चे नहीं बता पाते तो यह शायद सिखाने के तरीकों में चूक व खामी का मामला है।

शिक्षकों के साथ बातचीत में मैंने पूछा कि हम थोड़ा तसल्ली से सोचें कि आखिर हमें गिनती सीखने की ज़रूरत क्यों है। इस पर जवाब मिला कि गिनती इसलिए आनी चाहिए कि हम चीज़ों को गिन सकें। जैसे कि अगर किसी कार्यशाला में शिक्षक शामिल हुए हैं और उनके लिए चाय-समोसे की व्यवस्था की जानी है तो हमें गिनने की ज़रूरत होगी। सबसे पहले कुल शामिल लोगों को गिन लेंगे और फिर हम उतने ही समोसे-चाय का ऑर्डर देंगे। आम तौर पर दैनिक जीवन में हम गिनती का इस्तेमाल एटीएम या बैंक से पैसे निकालने के दौरान करते हैं। अगर मैंने दो हज़ार रुपए निकाले हैं तो क्या उतने नोट मुझे मिले हैं या नहीं। अगर कक्षा में बच्चों के लिए आम खरीदना है और प्रत्येक को एक-एक आम मिलना है तो हम बच्चों की संख्या को गिनेंगे व उतने आम खरीदेंगे। या कि अगर बारात जानी है तो बारात में कितने लोग हैं, उसके मुताबिक हम बारात जाने के लिए वाहन की व्यवस्था करते हैं ताकि उतने लोग बस में बैठ सकें। ऐसे और भी तमाम उदाहरणों पर बातचीत की।

"तो फिर क्या किया जाए?" शिक्षक का सवाल था। मैंने उनसे प्रति-प्रश्न किया कि "अब हमें क्या करना चाहिए, आप ही सोचिए।"

शिक्षक का कहना था कि "बच्चों को गिनना सिखाना होगा।" लेकिन उन्होंने तुरन्त ही प्रश्न किया कि "कब तक गिनवाएँगे?" मैंने कहा, "जब तक गिनना न आ जाए।"

ऐसा लगता है कि हम बच्चों को गिनती सिखाने की हड़बड़ी में होते हैं। हम एक बार बता दें और वे सीख जाएँ। दरअसल, ऐसा होता नहीं है।

एक बात और है। जब हम किसी चीज़ को सीखते हैं तो *ट्रायल एंड एरर* से सीखते हैं। जैसे कि एक छोटी बच्ची सायकिल चलाने के दौरान सायकिल चलाने का आनन्द भी लेती जाती है और उसकी जटिलता को सीखती भी जाती है। ऐसा ही तैरने में भी होता है। मैंने छोटे बच्चों को तैरना सीखते हुए देखा है और पाया है कि उनका कौतूहल चरम पर होता है। वे तैरते हुए हाथ-पैर पटकते हैं, छप-छप

करते हैं, थोड़ा तैरते हैं और कभी वे पानी में खड़े हो जाते हैं। इस दौरान वे गलतियाँ भी खूब करते हैं। जैसे कि सायकिल चलाने के मामले में बच्चे कई बार गिरते हैं और फिर धूल झाड़कर खड़े होकर फिर से सायकिल चलाना शुरू कर देते हैं। आखिरकार बच्चे सायकिल चलाना सीखकर ही दम लेते हैं। ऐसा इसलिए कि बच्चों के पास गलतियाँ करने व उनसे सीखने के भरपूर मौके होते हैं।

अर्थपूर्ण माहौल की ज़रूरत

गिनती सिखाने के मामले में कक्षाओं में जो माहौल होता है, वह नीरस होता है। अचानक ही शिक्षक बच्चों को गिनती बुलवाना एवं लिखवाना प्रारम्भ कर देते हैं। कहीं-कहीं कंकड़, बीजों वगैरह से उन्हें गिनने को कहा जाता है। काफी हद तक बच्चे गिन तो पाते हैं लेकिन वे उन संख्याओं को पहचान नहीं पाते। यह वैसी ही बात है जैसे पढ़ने की प्रक्रिया में होता है। मैंने पाया है कि बच्चे पेड़-पौधों, जन्तुओं को सामने देखकर पहचान जाते हैं। उन्हें चित्रों में भी पहचान पाते हैं। लेकिन अगर उस पेड़ या जन्तु का नाम लिखा हो तो वे नहीं पढ़ पाते। तो यह अगले स्तर की समस्या है। वैसे ही बच्चे स्कूल आने के पहले कुछ हद तक गिन पाते हैं। इससे आगे कैसे बढ़ा जाए, यह समझने के लिए कुछ शिक्षकों द्वारा अपनाए जाने वाले उदाहरण देखते हैं।

यह वाकया आदिवासी इलाके की प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों की एक आवासीय आश्रमशाला का है। आश्रमशाला के मैदान में दो झूले लगे हैं। इन झूलों पर बच्चे छुट्टी के समय में झूलते हैं। शिक्षक ने ऐसा इन्तज़ाम किया था कि सभी बच्चे झूला झूल सकें। जब एक बच्चा झूला झूलेगा तो उन्हीं में से एक बच्चा झूला झूलने की गिनती करेगा। जब पच्चीस हो जाएगा तो दूसरा बच्चा झूला झूलेगा।

जब कम बच्चे होते हैं तो झूलों की संख्या बढ़ा दी जाती है जैसे कि चालीस या पचास। इस प्रक्रिया में वे बच्चे भी सहजता के साथ गिनती सीख पाते हैं जिन्हें गिनती नहीं आती। अगर बीच में कोई नया बच्चा झूले की गिनती करता है और गड़बड़ करता है तो पास खड़ा हुआ अन्य बच्चा टोक देता है। यह दिलचस्प है कि इस स्कूल में आने वाले पहली के बच्चे भी झूले की गिनती करना सीख गए।

आश्रमशाला में कुछ सब्ज़ियाँ उगाई जाती हैं। शिक्षक क्यारियों में उगे बैंगन तोड़कर उन्हें गिनने को कहते। बच्चे जब बैंगन तोड़कर लाते तो शिक्षक भी वहाँ मौजूद होते और बच्चे बैंगन गिन पाते।

एक स्कूल में शिक्षक ने पहली कक्षा के बच्चों के समूह बना दिए और उन्हें मैदान में से मुट्ठी भरकर कंकड़ लाने को कहा। अब उन्होंने

बच्चों से कहा कि "इसमें से दस कंकड़ गिनकर अलग रख लो।" बच्चे गिनने लगे। शिक्षक ने उन पर नज़र रखी। जो बच्चे नहीं गिन पा रहे थे, उन्हें दोबारा-तिबारा गिनने को कहा।

शिक्षक ने कहा कि "जब गिन लोगे तो इससे आगे का खेल आसान होगा।" अब उन्होंने कहा कि "इन दस कंकड़ों को छोटे-से बड़े क्रम में जमाना है।" दरअसल, बच्चे क्रम का अर्थ नहीं समझ पा रहे थे। इसलिए शिक्षक ने ही इसे एक बार करके दिखा दिया। अब बच्चे भी छोटे से बड़े के क्रम में कंकड़ों को जमाने लगे।

एक शिक्षक ने बच्चों को कनेर के पाँचे दिए और उनसे कहा कि वे उनके साथ खेलें। बच्चों को पाँचे के साथ खेलने का अनुभव था, सो वे खेलने लगे और उछालों को गिनने लगे।

शिक्षक ने ऐसे तमाम खेल खोज रखे थे जिनमें बच्चों को गिनती का इस्तेमाल सहजता के साथ करने को मिलता है।

संख्या नाम व गिनने का सिद्धान्त

गिनती के संख्या नामों से परिचय और चीज़ों को गिनना दरअसल, साथ-साथ चलने वाली प्रक्रिया है। बच्चे स्कूल आने से पहले इन संख्या नामों और गिनने की प्रक्रिया से कुछ हद तक परिचित होते हैं। केवल संख्या नामों का उच्चारण करने व उन्हें रट लेने से बात नहीं बनती। मैंने यह भी देखा है कि बच्चे अक्सर इन संख्या नामों को अपनी बोली में जानते हैं। जैसे कि ग्यारह को ग्यारा, तेरह को तेरा, पन्द्रह को पन्दरा और उन्नीस को ओगणीस बोलते हैं। बच्चों की इस शब्दावली को कक्षा में

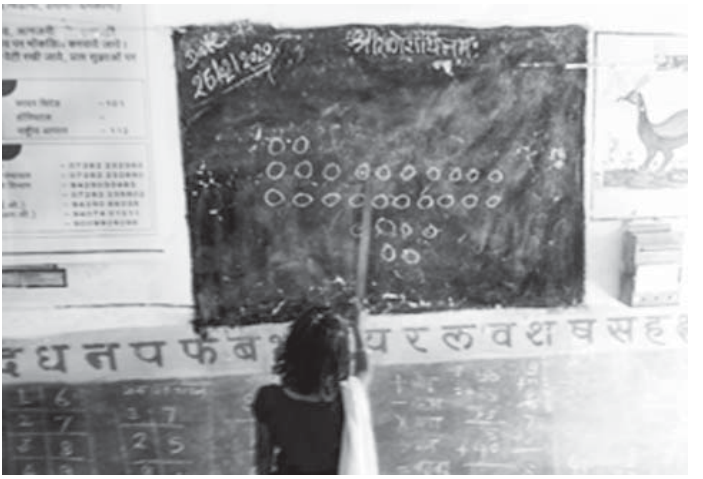

स्वीकार करना होगा। अगर बीच में टोंका-टाकी की जाए तो बच्चे सहम जाते हैं।

एक कक्षा में शिक्षक ने बच्चों द्वारा बोले जाने वाले इन संख्या नामों को सही उच्चारित करने पर ज़ोर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि बच्चे सीखने से विमुख होने लगे। फिर शिक्षक को सुझाव दिया गया कि शुरुआती तौर पर बच्चे इन संख्या नामों को जैसा भी बोलते हैं, उसे स्वीकार्यता मिलनी चाहिए। शिक्षक ने ऐसा प्रयास किया। बच्चे उन संख्या नामों को बोलते और शिक्षक उन्हें अपनी ओर से ग्यारह, तेरह, पन्द्रह आदि बोलकर दोहराते। बच्चे शिक्षक से सुनकर बड़ी सहजता के साथ उनका अनुसरण करने लगे।

गिनती का दूसरा सिद्धान्त है एक से एक की संगति। यह अहम है कि जब हम किसी चीज़ को गिनते हैं तो उस चीज़ को उठाते हैं और उसके साथ संख्या नाम बोलते हैं। जैसे कि अगर हमें बैंगन के ढेर की गिनती करना हो तो एक बैंगन को उठाकर बोलते हैं 'एक'। फिर दूसरा बैंगन उठाकर उसे अलग रखते हैं, और अब हो गए 'दो'। और यह क्रम जारी रहता है।

मेरा अनुभव है कि इस प्रक्रिया में बच्चों के बोलने और अपने हाथों से उस चीज़ को उठाकर रखने के बीच के तालमेल में थोड़ा वक्त लगता है। लेकिन यह भी कहूँगा कि बच्चे इस तालमेल को अभ्यास से जल्द ही पकड़ पाते हैं। एक से एक की संगति को बिठाने का अभ्यास अगर ठीक से हो जाए तो फिर वे उसे आत्मसात कर पाते हैं। आपने देखा होगा कि बैंक कर्मी नोटों की गड्डी को काफी तेज़ी-से गिन पाता है। इतनी जल्दी मैं नहीं गिन सकता। यह उस बैंक कर्मी के अभ्यास का परिणाम ही है।

जब हम गिनते हैं तो दो काम एक साथ करने होते हैं। एक-एक चीज़ को अलग-अलग करना और हरेक को एक अंक से जोड़ना। आम तौर पर वयस्क इस प्रक्रिया को अपने अनुभव से सीख लेते हैं और अमूर्त रूप से भी कर पाते हैं। लेकिन बच्चों के पास यह अनुभव अपेक्षाकृत सीमित होता है। कक्षाओं में बच्चों के साथ काम करने के दौरान समझ में आया कि बच्चों को संख्याओं के नाम पता हैं लेकिन कभी-कभी किसी चीज़ को उठाते समय या इंगित करने से पहले ही वे संख्या बोलना शुरू कर देते हैं। या कई बार उल्टा होता है कि चीज़ को उठा लेते हैं या इंगित तो कर देते हैं लेकिन संख्या नाम बोलने में देरी कर देते हैं। इन दोनों ही मामलों में वे सही गिनती नहीं कर पाते। ऐसा इसलिए होता है कि बच्चे चीज़ व संख्या में संगति नहीं बिठा पाते। बच्चे इस बात को नहीं पकड़ पाते कि कब गिनती बोलना और कब बन्द करना है। दरअसल, यह एक हुनर है जो बारम्बार अभ्यास से ही आता है।

अन्तिम चीज़ का संख्या-नाम ही उस समूह की चीज़ों की कुल संख्या होती है। एक बात और कि जब शुरुआती तौर पर गिनते हैं तो सभी की गिनती में फर्क होता है। इस फर्क का अर्थ है कि बच्चों का संख्या-नाम बोलना और चीज़ के साथ संगति बिठाने का अनुभव अभी पुख्ता नहीं हुआ है। ऐसे बच्चों की पहचान करके, उनके साथ और काम करने की ज़रूरत होती है।

कुल मिलाकर, बच्चों के साथ संख्या-नाम व एक-के-साथ-एक की संगति का अभ्यास करवाने पर उनमें गिनने का आत्मविश्वास पैदा होता है और वे इसमें उस्ताद बनते जाते हैं।

आम तौर पर गिनती को हम एक उत्पाद के रूप में ही देखने के आदी हो चुके हैं। दरअसल, गिनना एक प्रक्रिया है, न कि उत्पाद। इस पूरी प्रक्रिया में और बहुत-सी बारीकियाँ हैं। जैसे कि जो चीज़ गिनी गई, उसमें दो और चीज़ों को मिला दें तो कुल कितनी होगीं। या एक चीज़ को कम कर दिया जाए तो कितनी होगी जैसी कवायदें गिनने की प्रक्रिया को समझने में बेहतरी प्रदान करती हैं।

कहाँ से गिनना शुरू करें?

मैंने कक्षा में बच्चों के साथ गिनती पर काम करते हुए बोर्ड पर चिड़ियों के चित्र बनाए और उन्हें गिनने को कहा। बारी-बारी से बच्चे बोर्ड के पास आते और उन्हें गिनते।

फिर मैंने बच्चों से पूछा कि "बोर्ड पर बनी चिड़ियों में से पाँच चिड़िया उड़ गईं तो बताओ कि कुल कितनी बचीं?" यह अभ्यास कई बार किया गया। फिर बच्चों से कहा, "अब अगर यहाँ तीन मछलियाँ और बना दी जाएँ तो कुल कितनी हो जाएँगी?"

फिर मैंने बोर्ड पर गुड़ियों के चित्र बनाए और बच्चों से कहा, "मछलियों, चिड़ियों और गुड़ियों को एक साथ गिनो। और फिर इन्हें जोड़कर दिखाओ। क्या गिनती करने पर भी यही संख्या आती है?" बच्चे यह कर पाए।

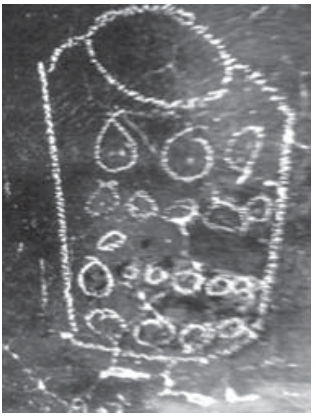

अब मैंने पूछा, "अगर नीचे से गिना जाए तो क्या संख्या वही आएगी?" बच्चे चुप थे। मैंने फिर कहा कि "अगर कोई बच्चा ऊपर से गिने और कोई नीचे से गिने तो क्या वही संख्या आएगी?" बच्चे अब भी चुप थे। मैंने कहा, "गिनकर देख सकते हैं।" एक बच्चे ने ऊपर से गिना, एक ने नीचे से गिना। बच्चों को यह दिलचस्प लगा कि चाहे कहीं से भी गिनो, वही संख्या आती है।

अगले चरण में मैंने एक बरनी बनाई और उसमें कुछ गेंदें बनाईं। दिलचस्प बात जो मैं देख पाया कि हर बच्चे का बरनी में गेंदें गिनने का तरीका अलग था। एक बच्चे ने बरनी के पैंदे से दाएँ से गिनना शुरू किया। दूसरे ने बरनी के लम्बवत गिनना शुरू किया।

दरअसल, अलग-अलग चीज़ों को कहीं से भी गिनने पर संख्या में कोई फर्क नहीं आता, इसका अभ्यास देना ही मेरा मकसद था। यह एक खेल से कम नहीं था।

इस अभ्यास से बच्चों ने 'करके' सिद्ध किया कि कहीं से भी गिनो, संख्या वही आएगी।

गिनती को लेकर एक और गतिविधि बच्चों के साथ की जो उन्हें बेहद पसन्द आई। एक बच्चे से कहा कि वह कक्षा के बाहर जाए और बिल्ली की आवाज़ 'म्याऊँ' निकाले। कक्षा के बच्चे 'म्याऊँ' आवाज़ की गिनती करेंगे। वह बच्चा कक्षा के बाहर गया और 'म्याऊँ' की आवाज़ निकालने लगा। अन्दर बच्चे उसकी 'म्याऊँ' को गिन रहे थे। उस बच्चे ने 17 बार आवाज़ निकाली जो बच्चों ने गिनी। फिर तो क्या था। हर किसी को एक और खेल हाथ लग गया था।

अमूर्त घटनाओं की गिनती

तो यह तो मूर्त चीज़ों को गिनने की बात हुई। क्या ऐसी चीज़ों की गिनती भी हो सकती है जिन्हें हम देख नहीं पाते? जैसे कि हम अपनी साँस को देख नहीं पाते, केवल महसूस कर पाते हैं। मैंने दूसरी के बच्चों के साथ इसे आज़माया। और उनसे पूछा, "क्या तुम साँस लेते हो?" बच्चे कुछ समझ नहीं सके। मैंने

उनसे कहा, "तुम अपनी नाक के पास हथेली को लाओ। क्या कुछ महसूस होता है?" बच्चे ठीक से समझ नहीं सके। फिर मैं अपनी हथेली को नाक के पास लाया और प्रदर्शित किया। बच्चे भी ऐसा करने लगे, हालाँकि, वे समझ नहीं सके। मैंने काफी कोशिश की तो कुछ बच्चों को यह समझ में आया कि नाक में से हवा निकलती है। अब मैंने पूछा, "क्या इसे तुम गिन सकते हो?" दूसरी के बच्चों को साँस को महसूस करने में दिक्कत हो रही थी। हालाँकि, इस तरह का निष्कर्ष निकालना जल्दबाज़ी होगा कि दूसरी कक्षा के बच्चे साँस को नहीं गिन पाते। हमें इसे और भी आज़माना होगा। एक अनुभव याद आता है जब कक्षा पाँचवीं के बच्चों के साथ साँस गिनने का प्रयोग किया था। मैंने उन बच्चों को समझाया कि एक साँस का मतलब क्या होता है। वे फिर अपनी साँस गिन पाए थे। इसी प्रकार से मैंने कक्षा पाँचवीं के बच्चों के साथ दिल की धड़कन को गिनने का प्रयोग भी किया था जिसमें वे धड़कन को गिन पाए थे।

और अन्त में

अनुभव बताते हैं कि बच्चे अनौपचारिक माहौल में गिनती बेहतरी से सीखते हैं जहाँ उन्हें पता ही नहीं होता कि गिनती सिखाई जा रही है। अपने सीमित अनुभवों के आधार पर यह कह सकता हूँ कि बच्चे खेलते हुए सीख पाते हैं। दरअसल, खेल में संवाद और सहयोगी रवैये को अपनाना होता है। साथ ही, अपने साथियों के बीच उत्पन्न चुनौतियाँ सीखने में अधिक सहायक होती हैं। जैसे कि गिल्ली-डण्डे के खेल में बच्चों को उछाली गई गुल्ली से गुच्ची तक डण्डों से मापना होता है। इस दौरान बच्चे पर गिनती सीखने का दबाव नहीं होता। झूले झूलने का जो उदाहरण दिया, वहाँ भी बिना किसी दबाव के बच्चे गिनती सीख रहे हैं।

एक और बात जो प्राथमिक कक्षाओं में गिनती सिखाने के लिए ज़रूरी है। दरअसल, इस दौरान अभ्यास व सुधार ज़रूरी है, इसलिए गिनती सिखाने के दौरान काफी धैर्य रखने की ज़रूरत होती है।

कालू राम शर्मा (1961-2021): अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

यह लेख उन्होंने सन् 2020 में *संदर्भ* समूह के साथ साझा किया था।

सभी फोटो: कालू राम शर्मा।

मन के चित्रों और खयालों से लिखने-पढ़ने की चिंगारी तक

वरुण गुप्ता

अंजलि, कक्षा-5, अगस्त, 2017

एक बार 2017 में, स्कूल खत्म होने के बाद दस वर्ष की एक छात्रा ब्लैकबोर्ड पर कुछ लिख रही थी। कक्षा अध्यापक होने के नाते मैंने उत्सुकतावश पूछा, "बेटा, आप क्या लिखना चाहती हो?" छात्रा ने कहा, "मैं अपनी मम्मी का नाम लिख रही हूँ।" उसके द्वारा लिखा शब्द 'राता' को देखकर मैंने पूछा, "आपकी मम्मी का क्या नाम है?" छात्रा ने कहा, "रानी।" यह सुनकर मुझे एक धक्का-सा लगा और मैं समझ नहीं पा रहा था कि क्या महसूस करूँ। अभी कुछ दिन पहले ही मैं इस स्कूल से एक अध्यापक के तौर पर जुड़ा हूँ और यह ज़मीनी सच्चाई देखकर झटका लगा कि अधिकतर बच्चे, यहाँ तक कि 9 व 10 वर्ष के विद्यार्थी भी पढ़-लिख नहीं पाते हैं।

मेरा मानना है कि हर बच्चा बहुत कुछ जानता है और इस संसार को देखते हुए अपनी समझ बनाता जाता है। बस ज़रूरत है उसे आज़ादी से अपनी बात कहने-सुनाने की और

अध्यापक के स्नेह व समझ के साथ-साथ अर्थपूर्ण वातावरण की।

खयालों को कागज़ पर उतारना

इस स्कूल में अपनी नई पारी शुरू करते हुए मैंने बच्चों से बातचीत द्वारा शुरुआत की - कुछ अपने बारे में बताकर, फिर उनके मन की बात सुनकर। वे अपने बारे में, अपनी पसन्द-नापसन्द, अपने खेल, अपने परिवार, दोस्तों, गाँव, दादा-दादी, गाँव के तालाब, खुदाई के दौरान मिले एक साँप, पेड़ पर चिड़िया के घोंसले, अण्डे, नन्हे चूज़े और न जाने क्या-क्या बताते थे। धीरे-धीरे मैं हर बच्चे व उसकी दुनिया के बारे में जानने लगा था। मैं उन्हें कहानियाँ सुनाता और कहानी के माध्यम से उनके अनुभवों को जोड़ता, उन अनुभवों पर बातचीत करता और उस पर उन्हें स्वतंत्र तरीके से अपनी समझ की इमारत बनाने देता था। यह प्रक्रिया इतनी मज़ेदार और अर्थपूर्ण थी कि अब बच्चे खुद से ही अपनी बात कहने के लिए काफी उत्सुक रहते थे। यह चरण इसलिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा क्योंकि इस बातचीत व विचारों के आदान-प्रदान से बच्चों और शिक्षक के बीच विश्वास, स्नेह और आत्मीयता का एक सम्बन्ध स्थापित हुआ जो किसी भी सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के लिए बहुत ज़रूरी और नाज़ुक होता है। जैसे बच्चे अध्यापक से सीखते हैं, वैसे ही अध्यापक भी बच्चों से सीखता व अपनी समझ बनाता है। यही सम्बन्ध और लगाव की डोर आगे का मार्ग प्रशस्त करती है।

साथ ही, मैंने बच्चों से कहा कि वे अपनी बात को चित्रों के माध्यम से भी बता सकते हैं। वे अपने मन से चित्र बनाने लगे - कुछ केवल पेंसिल की लकीरें, कुछ रंगों से भरी हुई झोंपड़ी, पेड़, पहाड़, नदी, परिवार व आसपास के लोग आदि। कुछ बच्चों ने चित्रों में उन लोगों व चीज़ों के नाम भी लिखने की कोशिश की। बच्चों के चित्रों ने मुझे उनके खयालों व भावनाओं को समझने में बहुत मदद की।

तुम बोलो, मैं लिखता हूँ

कुछ बच्चे जो अभी भी बिलकुल

अंजलि राजकुमार, कक्षा-4, 11 जुलाई, 2017

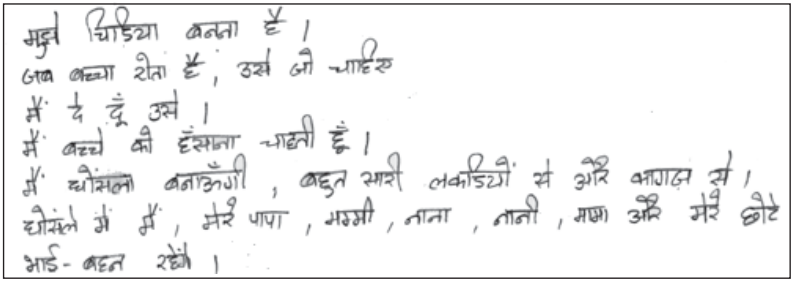
मुझे चिड़िया बनना है।
जब बच्चा रोता है, उसे जो चाहिए
मैं दे दूं उसे।
मैं बच्चे को हँसाना चाहती हूं।
मैं घोंसला बनाऊँगी, बहुत सारी लकड़ियों से और घास से।
घोंसले में मैं, मेरे पापा, मम्मी, नाना, नानी, मामा और मेरे छोटे भाई-बहन रहेंगे।

शिवानी, कक्षा-4, अगस्त, 2017

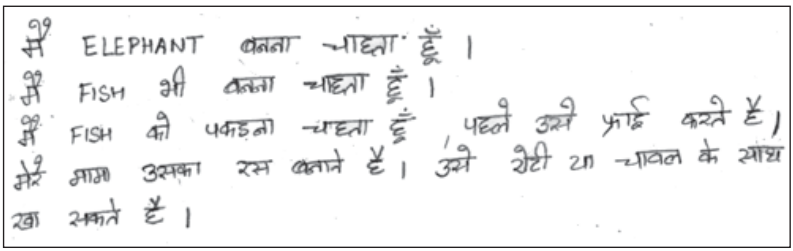
मैं ELEPHANT बनना चाहता हूँ।
मैं FISH भी बनना चाहता हूँ।
मैं FISH को पकड़ना चाहता हूँ, पहले उसे फ्राई करते हैं।
मेरे मामा उसका रस बनाते हैं। उसे रोटी या चावल के साथ खा सकते हैं।

अभिषेक, कक्षा-4, अगस्त, 2017

बच्चों ने जो बोला, समन्वयक ने उसे लिप्यान्तरित करके बॉक्स में लिख दिया।

नहीं लिख रहे थे या नहीं लिखना चाह रहे थे, मैंने उन्हें कहा, "तुम बोलो कि क्या लिखना चाहते हो और मैं उसे चित्र के साथ लिख दूँगा।" मैंने बच्चों के साथ मिलकर उनके लिए 'शब्दकोश' बॉक्स भी बनाए। हर बच्चे से मैं कुछ शब्द पूछता कि वे किसका नाम या क्या चीज़ लिखना या जानना चाहते हैं और फिर उसे उन बॉक्स में लिख देता। पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया में इन 'शब्दकोश' बॉक्स से बहुत कम सफलता मिली (शायद किन्हीं जाने-अनजाने कारणों की वजह से या शायद मुझे ज़्यादा सब्र रखना चाहिए था), परन्तु इनसे मुझे उनके मन व दिमाग में झाँकने और उनके जिज्ञासा बिन्दुओं को जानने का मौका ज़रूर मिला।

सिम्मी, कक्षा-4, अगस्त, 2017

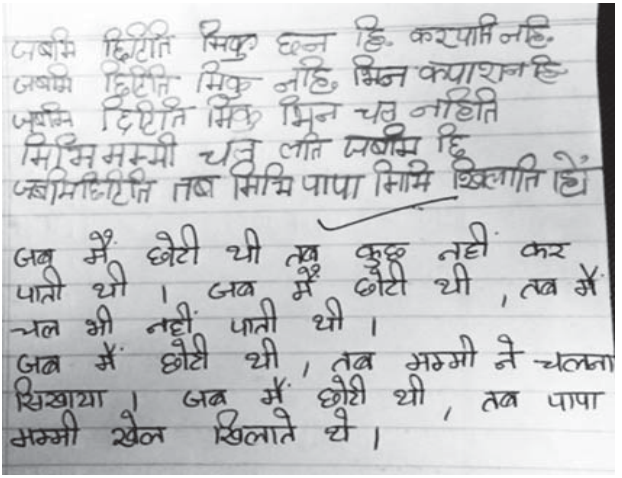

जब मैं छोटी थी तब कुछ नहीं कर पाती थी। जब मैं छोटी थी, तब मैं चल भी नहीं पाती थी।
जब मैं छोटी थी, तब मम्मी ने चलना सिखाया। जब मैं छोटी थी, तब पापा मम्मी खेल खिलाते थे।

सिम्मी, कक्षा-4, अगस्त, 2017

छात्रा ने अपनी भाषा में और अपने तरीके से लिखा जिसे समन्वयक ने हिन्दी में लिप्यान्तरित किया।

जैसी बोली, वैसा लेखन

अपनी अभिव्यक्ति की आज़ादी और उसकी कद्र होना – कक्षा के इस उत्साहजनक व निष्पक्ष वातावरण ने बच्चों को प्रोत्साहित किया कि वे उन्मुक्त भाव से अपनी बात लिखकर साझा करें। हमारे देश के विभिन्न प्रान्तों – उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल आदि से उनके परिवारों की जड़ें बहुत मज़बूत और गहरी हैं। इसकी झलक उनके लेखन में दिखती थी। बच्चों से बातचीत कर मैंने समझा कि वे क्या लिखना चाह रहे थे। यह मेरे लिए भी बहुत कुछ सीखने का एक मौका था, जैसे कि कुछ बच्चे 'बिल्ली' को 'बिलौटा' बोलते व लिखते थे जबकि मैंने 'बिलौटा' शब्द पहली बार सुना था। पहले कुछ शब्दों से शुरू हुआ सफर, अब कुछ वाक्यों तक आ गया था। भाषा के अधिकतर बुनियादी पहलू तो उनमें मौजूद थे, पर अभी भी वे खुद अपना लिखा हुआ मुश्किल से पढ़ पा रहे थे।

दो बातों ने धीरे-धीरे उनके अक्षर ज्ञान व भाषा ज्ञान को बढ़ाने में मदद की। पहली, रोज़ कहानी सुनना व बच्चों के सन्दर्भ में चर्चा करना और दूसरी, बच्चों के द्वारा बोले गए किस्से-कहानियों को लिखकर कक्षा में प्रदर्शित करना। अपने चित्रों व साथ में शिक्षक द्वारा लिखी गई कहानी को वे बड़े चाव से देखते व पढ़ने की कोशिश करते थे। एक रस्सी से बच्चों के चित्र-कहानी को कक्षा में टाँगना और दीवार पर चिपकाना भी उनके उत्साह को बढ़ा रहा था।

दोहराव व 'और' का महत्व

अब अगले चरण में इनके लेखन में कुछ पैटर्न देखने को मिले, जैसे एक ही बात को बार-बार दोहराना, एक ही वाक्य का, थोड़े-से बदलाव के साथ, बार-बार इस्तेमाल करना। इसके अतिरिक्त, वे अपने लेखन में 'और' शब्द का बहुत ज़्यादा इस्तेमाल कर रहे थे।

अगर देखा जाए तो भाषा सीखने के सफर में यह एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। इससे पता चलता है कि बच्चे अपने खयालों को लिखकर बताने के लिए उत्सुकता से तैयार हैं, जो उन्हें एक प्राकृतिक अन्तःस्फूर्ति का एहसास कराता है।

बातों को दोहराने में, बच्चे वाक्य के किसी एक हिस्से का बार-बार सहारा लेते हैं, शायद अपनी बात को आगे बढ़ाने के लिए। बिना अल्प-विराम और पूर्ण-विराम इस्तेमाल किए, 'और' शब्द का अधिकाधिक इस्तेमाल – शायद उनके खयालों की निरन्तरता को दर्शाता है।

साहित्य में भी हम देखते हैं कि छोटे बच्चों की कहानी-कविता में किसी बात या कुछ वाक्यों का बार-बार दोहराव किया जाता है।

बच्चों से लगातार बातचीत

हमारे इस सीखने-सिखाने के सफर में एक और बात ने बड़ी मदद की और वह थी - बच्चों के साथ सर्कल-टाइम मतलब लगातार उनसे एक-एक करके बातचीत करते रहना। मैंने यह महसूस किया और पाया कि एक शिक्षक के बच्चों से लगातार बातचीत करते रहने से दोनों के बीच का सम्बन्ध और मज़बूत होता है। अधिकतर बच्चे अपने निश्छल व निर्मल मन को साझा करने के लिए तैयार रहते हैं, बस ज़रूरत होती है एक ऐसे शिक्षक या इन्सान की जो उनकी बातें ध्यान से सुने व भावनाएँ समझ सके। दूसरी बात यह है कि कुछ अन्य बच्चे जो शुरुआत में कम खुलते हैं, कम बात करते हैं, वे पता नहीं कब आपके प्रयासों से अपने मन के द्वार खोलने लगें। एक बार जब किसी भी बच्चे को शिक्षक पर भरोसा हो जाता है और वह अपने मन की बात बोलने लगता है, तब उसके सीखने- सिखाने के सफर में तेज़ी व आत्मविश्वास आ जाते हैं। यह इस कथन को भी चरितार्थ करता है कि शिक्षक व बच्चे, दोनों एक-दूसरे से सीखते हैं।

मेरे अनुभव में, बच्चों से बातचीत करने के दोनों तरीके, समूह में एक गोला बनाकर व एक-एक से अलग बातचीत, ज़रूरी हैं और ये एक-दूसरे के पूरक भी हैं। समूह में गोला बनाकर बैठने की बड़ी उपयोगिता और महत्ता है। इससे सभी बच्चों को एक समान जगह उपलब्ध होती है, कोई आगे-पीछे नहीं होता और बीच की खाली जगह एक सुरक्षित दूरी का एहसास

रिम्मी, कक्षा-5, जुलाई, 2018

कराती है। गोले में सभी बच्चे और शिक्षक एक-दूसरे को अच्छे से देख, बोल व सुन पाते हैं। अनेक बार बच्चों के साथ गोले में बैठकर स्कूल व कक्षा के कई मुद्दों पर बातचीत हुई – क्या अच्छा लग रहा है, क्या अच्छा नहीं लग रहा है, कहाँ क्या दिक्कत है, आज खेल के मैदान में झगड़ा किस बात पर हुआ, हम दूसरों को भला-बुरा क्यों कहते हैं, जब हमें गुस्सा आता है, तब हमारे अन्दर क्या चल रहा होता है, दूसरों से मार-पीट करके क्या किसी को अच्छा लग सकता है, गुस्से में हम अपनी बात दूसरों तक कैसे बेहतर तरीके से पहुँचा सकते हैं आदि। इस गतिविधि ने बच्चों को सभी के सामने ज्वलन्त मुद्दों पर अपने विचार रखने और सुनने का मौका दिया। साथ ही, उनका आत्मविश्वास भी बढ़ा। मुझे लगता है कि इसने बच्चों को भविष्य के लिए तैयार करने के बीज भी डाले कि मुद्दा कुछ भी हो, हम उसके बारे में बातचीत कर सकते हैं।

बच्चों से एक-एक कर अलग से बातचीत करने के कारण मुझे उन्हें और नज़दीक से जानने का मौका मिला – उनकी अपनी ज़िन्दगी में क्या चल रहा है, उनका मन कहाँ व्यस्त है, कौन-सी बात उन्हें परेशान कर रही है, क्या कोई उनके पास है जिसके साथ वे अपनी बातें, उलझनें, दिक्कतें साझा कर सकें आदि। बातचीत के इस धागे ने शिक्षक व छात्र के सम्बन्ध को मज़बूती देते हुए कक्षा के माहौल को सँवारने में मदद

की है और सँवरे हुए कक्षा के इस वातावरण ने भाषा के सीखने-सिखाने के सफर को गति देने का काम किया।

'अच्छा प्रयास' का कमाल

भाषा सीखने-सिखाने के इस सफर में बच्चों की भागीदारी व चुस्ती जागृत होने के बाद भी मुझे कुछ कमी महसूस हुई। इसका एहसास मुझे बच्चों के कथन, उनके भ्रम व माँगों से भी हुआ। चूँकि कुछ बच्चे अब लिखने लगे थे और मैं उनको प्रोत्साहित करने के लिए अक्सर 'अच्छा' कहता था, इसलिए अब वे मुझसे अपनी कॉपी में *'गुड'* लिखने की माँग करने लगे। इससे मुझे खुशी तो थी पर मैं आगे के लिए थोड़ा चिन्तित और खबरदार भी था कि उन्हें उचित व काम के अनुसार ही प्रोत्साहन मिलना चाहिए। कहीं ज़्यादा प्रोत्साहन के कारण उन्हें भ्रम न हो जाए और उनके प्रयासों में कमी न आ जाए। मैंने कुछ बच्चों को कक्षा व स्कूल के बरामदे में यह कहते हुआ सुना था कि "अब मुझे लिखना आ गया है", "मैं तो अब लिख लेता हूँ" आदि।

ऐसी परिस्थिति में अध्यापक के लिए कोई भी निर्णय लेना थोड़ा मुश्किल हो जाता है। एक तरफ तो बच्चों की कोशिशें, उनके और मेरे लिए खुशी की बात थी तो दूसरी ओर बिना भ्रमित हुए इस दिशा में आगे बढ़ते रहना भी आवश्यक था। इसके अलावा एक और बड़ी समस्या थी कि कुछ बच्चे जो थोड़ी कम कोशिश कर रहे थे या कभी-कभी ही काम करते थे, उनकी पुस्तिका में क्या लिखूँ। कुछ सोचने के बाद मुझे एक हल मिला - *'गुड'* मैं उन बच्चों के लिए लिखने लगा जो लगातार अच्छी कोशिश कर रहे थे और जो बच्चे कम मेहनत कर रहे थे, उनके लिए 'Good effort' (अच्छा प्रयास) लिखने लगा। यह हल शायद काम कर गया क्योंकि इससे बच्चे सन्तुष्ट लगे और फिर उन्होंने इस बारे में कोई माँग नहीं की। हालाँकि, बच्चे तो बच्चे होते हैं, इसलिए कभी-कभी कुछ बच्चे एक-दूसरे को चिढ़ाते भी थे कि "तुमने कम लिखा है, कम काम किया है और मैंने ज़्यादा, इसलिए मुझे तो *'गुड'* मिला है।" मुझे सुनकर थोड़ा अजीब-सा लगता था लेकिन इसका समाधान भी बच्चों ने खुद ही निकाल लिया। ऐसे समय में दूसरा वाला बच्चा कहता कि "कोई बात नहीं, कम-से-कम मुझे 'Good effort' मिला है, कुछ दिन बाद मुझे *'गुड'* भी मिल सकता है।" उसका उत्तर और विश्वास मेरे लिए बहुत सुखदायक थे।

मेरे लिए यह एक बहुत महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक कदम था। मैं मानता हूँ कि हर बच्चे को उसके प्रयासों और कोशिशों के बाद सफलता का स्वाद चखने देना चाहिए। यह उनके आत्मविश्वास के लिए भी अत्यन्त ज़रूरी है।

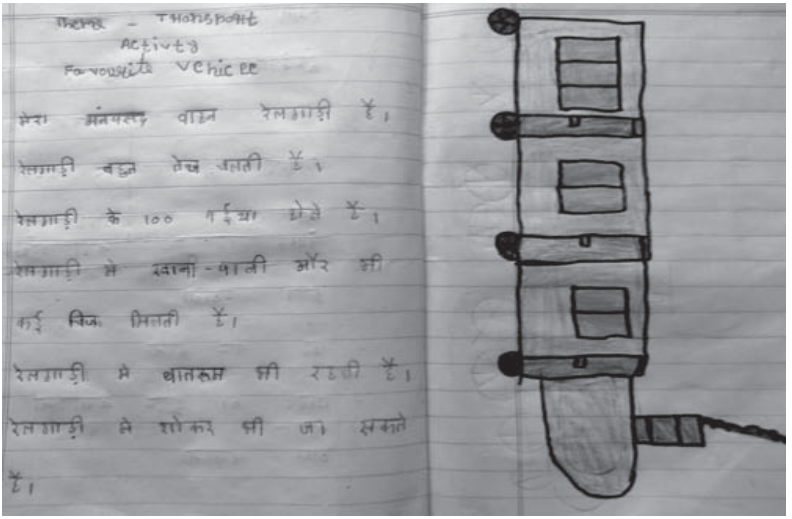

शिवानी, कक्षा-5, जनवरी, 2019

छात्रा का लिखा उसी की वर्तनी में -

थीम - ट्रांसपोर्ट

एक्टिविटी, फेवरेट व्हीकल

मेरा मनंपसद वाहन रेलगाड़ी है, रेलगाड़ी बहुत तेज चलती है।
रेलगाड़ी के 100 पईया होते है। रेलगाड़ी में खाना-पानी और भी कई चिज मिलती है।
रेलगाड़ी मे बातरूम भी रहती है। रेलगाड़ी मे शोकर भी जा सकते है।

बहरहाल, इसके बाद बच्चों के प्रयासों और लिखने की मात्रा में काफी इज़ाफा हुआ। इसके साथ-साथ मैं उनके सही शब्द लेखन और वाक्य संरचना पर भी काम करता रहा।

लिखने व पढ़ने का चस्का

बच्चों के साथ काम करते हुए इस सफर में मैं भी सीख रहा था कि उनके लिए एक उचित वातावरण और परिस्थितियाँ कैसे बना सकता हूँ। इसमें मुझे प्रो. कृष्ण कुमार की किताब *बच्चे की भाषा और अध्यापक* से बहुत मदद मिली जिसमें बच्चे स्कूल व घर में क्या करते हैं, देखते हैं, महसूस करते हैं, गाँव में कहाँ-कहाँ घूमते हैं, कौन-से नए दोस्त बनाते हैं, दोस्तों के साथ कैसे खेलते, हँसते, लड़ते हैं, बच्चों की इच्छाएँ, अपेक्षाएँ, डर, समूह में किए जाने वाले कार्य, क्या अच्छा लगा, क्या बुरा लगा, क्यों-कैसे आदि विषयों पर बात की गई है। साथ ही, इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि पढ़ना-लिखना अर्थपूर्ण व अनुभव से जुड़ा होना चाहिए तभी उस पर समझ की

इमारत बनाना व भविष्य के कौशल का विकास सम्भव है।

अब वे कक्षा में मौजूद छोटे पुस्तकालय से अपनी मर्ज़ी से किताबें उठाकर पढ़ने लगे थे। लाइब्रेरी में जाना व वहाँ की अनगिनत पुस्तकों को उत्सुकता से उलट-पलट कर देखना, अब उन्होंने शुरू कर दिया था। दीवारों पर लगे पोस्टरों, अखबार की खबरों को भी वे बार-बार देखते-पढ़ते थे।

लिखने में अब और विविधता आ रही थी। जैसे आसपास के पेड़-पौधों के बारे में जानते-सीखते हुए, चार-पाँच के छोटे समूह में, उन्होंने एक चार्ट बनाकर, उस पर चित्रों के साथ कहानी व जानकारी लिखी। कहानियाँ पढ़ने के बाद, उन पर समीक्षा लिखना, कहानी में क्या अच्छा लगा या नहीं लगा व क्यों, कौन-सा पात्र सबसे अच्छा लगा व क्यों, कहानी का अन्त कैसे अलग हो सकता था, इन सब विषयों पर भी उन्होंने लिखना शुरू किया। बच्चों की आपसी चर्चा से उनके बौद्धिक विकास, तर्क, भावनाओं से ओत-प्रोत बच्चों के निश्छल खयालात, उनके सपने आदि अब बहुत खुलकर उनके लेखन में भी झलकने लगे थे। यहाँ तक कि इन्सानों या जानवरों पर होने वाले अन्याय, अत्याचर से कभी-कभी उनका बाल सुलभ मन पिघल भी जाता था। ऐसे ही एक बार कक्षा में जब पाउलो फ्रैरे की *पेडागोजी ऑफ द ओप्रेस्ड* किताब से 'सत्रह ताकतवर शब्दों' पर चर्चा हो रही थी तो बच्चों ने बहुत स्वच्छन्द रूप से अपने-अपने विचार, भाव व तर्क रखे। तभी एक बच्चे ने एक वाक्या सुनाया, "बहुत समय पहले मैंने एक बार एक मज़दूर

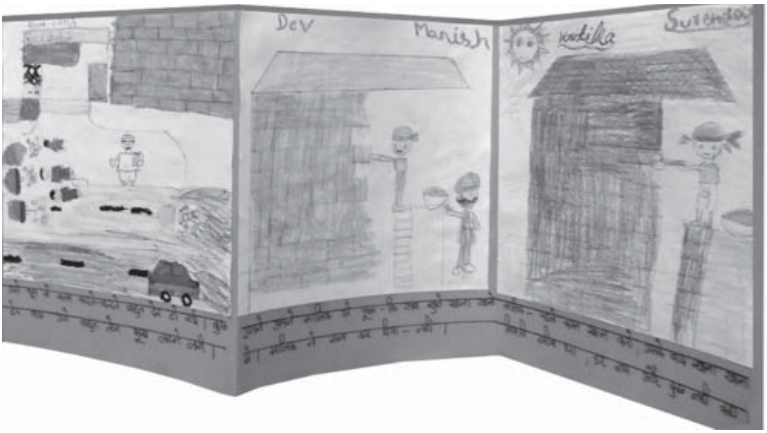

देव, मनीष, कृतिका व सुरेन्दर, एस.डी.एम.सी. प्राइमरी स्कूल, हौज़ खास, नई दिल्ली

को मकान बनाते हुए देखा था। गर्मी के दिन थे, मज़दूर को काम करते-करते दोपहर का समय हो गया था और वह थोड़ा आराम व भोजन करना चाहता था। लेकिन उसके मालिक ने उसे काम खत्म करने का हुक्म दिया। वह बेचारा मज़दूर खाना भी नहीं खा पाया।"

तब कक्षा में उसके दोस्तों ने कहा, "इस किस्से को हम कहानी की तरह लिखेंगे।" फिर 7-8 बच्चों ने चित्रों के साथ उस कहानी को अच्छे से लिखा। नवम्बर 2019 में बाल-पत्रिका *चकमक* में पहली बार हमारे स्कूल के बच्चों का काम, यानी कि यह कहानी छपी। बच्चों, स्कूल, माता-पिता और शिक्षकों – सभी के लिए यह हर्ष व गौरव का क्षण था। तब से लेकर अब तक, लगातार, बच्चे *चकमक* की विभिन्न गतिविधियों में हिस्सा ले रहे हैं – मज़ेदार प्रश्नों के उत्तर, कहानियों की समीक्षा, नई कहानी आदि लिख रहे हैं। अब बच्चे *एकलव्य* और *इकतारा* की विभिन्न किताबों, कविता कार्ड, पत्रिका व *एन.बी.टी.*, *कथा*, *तूलिका*, *प्रथम* आदि की भी किताबों को बड़े चाव से पढ़ते हैं। दो साल का बच्चों का यह सफर वाकई में चुनौतीपूर्ण था क्योंकि भले ही जीवन की शुरुआत में तीन से छ: साल तक शायद अच्छी नींव न बनी हो, लेकिन अब अपने प्रयासों और लगन से वे आत्मविश्वास के साथ अपने विचार व भाव लिखकर व्यक्त कर रहे हैं। अभी सफर खत्म नहीं हुआ है, यह चलता रहेगा और आशा है कि भाषाई ज्ञान के अर्जन से वे सशक्त बनेंगे और भावी जीवन में अर्थपूर्ण व सक्रिय भागीदारी निभा सकेंगे।

वरुण गुप्ता: अपनी संस्था, I Am A Teacher, गुरुग्राम, हरियाणा की तरफ से 2017 से दिल्ली में एक सरकारी प्राइमरी स्कूल में कार्यरत हैं। पेशे से मैकेनिकल इंजिनियर। लगभग दस साल ऑटोमोबिल इंडस्ट्री में काम करने के बाद, अपने स्वभाव व शिक्षक बनने के बचपन के सपने को पूरा करने के लिए वे सन् 2016 में दोबारा शिक्षा के क्षेत्र में आए। 2017 से कक्षा चौथी व पाँचवीं के बच्चों के साथ कार्य करते हुए बच्चों के भाषाई ज्ञान विकास के सफर के अपने अनुभवों को उन्होंने इस लेख में साझा किया है।

मार्गदर्शन: स्मृति जैन, डॉ. तपस्विनि साहू, डॉ. सोनिका कौशिक

सभी फोटो: वरुण गुप्ता।

सन्दर्भ सूची:

· प्राथमिक स्तर पर हिन्दी भाषा सीखने के प्रतिफल – एन.सी.ई.आर.टी.
· भारतीय भाषाओं का शिक्षण, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र
· बच्चे की भाषा व अध्यापक – प्रो. कृष्ण कुमार
· अध्यापक – सिल्विया एशटन वॉर्नर

छतरी

मंज़ूर एहतेशाम

देखा जाए तो झगड़ा होना ही था लेकिन वह जिस तरह हुआ था यह अन्दाज़ा किसी को नहीं था। खुद जिन लोगों ने शुरुआत की, उन्हें भी नहीं। दरअसल, शहर कुछ होने का इन्तज़ार करते-करते थक गया था।

गर्मी का लम्बा मौसम गुज़रने के बाद लोगों की मॉनसून की उम्मीद गलत साबित हुई थी और बरसात का डेढ़ माह सूखा बीत चुका था। सारे देश में बरसात, पानी और बाढ़ की खबरें हर माध्यम से शहर पहुँच रही थीं और शहर तप और झुलस रहा था जैसे किसी ने जादू करके बादलों के आने पर पाबन्दी लगा दी हो। लोग बारिश न होने की बात करते-करते इतने थक गए थे कि यह विषय ज़बान पर आना बन्द हो गया था। अपनी व्यस्तता से पल भर छुटकारा पाकर वे भाव-शून्य आँखों से आकाश की ओर देखते और थकान तथा निराशा पर पर्दा डालने, दोहरी मेहनत से, दिनचर्या में जुट जाते। पूजा और नमाज़ ही नहीं, अभी तक शहरवासी वर्षा न होने के विरोध में जलसा, धरना और बन्द – सब कर चुके थे और अब अगर बरसात न हुई तो कहाँ जाएँगे, सोचते बैठे थे।

शहर को दो अलग-अलग हिस्सों में बाँटती वह सड़क थी जिसके एक तरफ सैनेट्री का थोक मार्केट था और दूसरी ओर फर्नीचर, हैंडलूम, कीमती क्रॉकरी के शोरूम। सड़क पर दिन के एक खास समय, दुकानदारों की नज़रें किसी के इन्तज़ार में बेचैन रहने लगी थीं। वह कौन था, लोग उसका नाम तक नहीं जानते थे। रोज़, उस खास समय, दुनिया से बेनियाज़, वह उनके बीच से गुज़रता। कीमती कपड़े, बरसाती जूते पहने, हाथ में फोल्डिंग छतरी लिए वह इस तरह निकला था जैसे बरसात होने ही को हो। लोगों को लगने लगा था कि वे हमेशा से उसे इसी हुलिए में देखते आए हैं। वे यह सोचकर नाराज़ होते जा रहे थे कि यह आदमी बरसात न होने पर उनका और शहर का मज़ाक उड़ाता घूमता है। वह जब भी सड़क से गुज़रता, लोगों की घृणा भरी नज़रें उसका, ओझल होने तक पीछा करतीं।

हर शहर का अपना भूगोल होता है जो उसका मौसम और मिज़ाज तय करता है। इस शहर की विशेषता यहाँ के ताल-तलैया और पहाड़ थे जिनके साथ-साथ ही आबादी का फैलाव था। बीते वर्षों में यहाँ आबादी बढ़ी थी जिसके अनुपात में शहर की दीगर चीज़ों का विकास नहीं हो पाया था। एक ज़माने से पीने के पानी के लिए तालाब थे जो अब भी उसी तरह ज़रूरी थे। शहर के पास कोई बड़ी नदी नहीं बहती थी, सिर्फ छोटी-छोटी बरसाती नदियाँ थीं। तो भी मौसम की पहली बरसात शहर को किसी हिल-स्टेशन-सा ठँसा और खुशगवार कर जाती थी। बरसात में साल-से-साल ऊँच-नीच होती रही हो मगर इतने लम्बे समय तक पानी न गिरना किसी को याद नहीं था।

दिन-ब-दिन वर्षा का न होना शहर के लिए संकट बनता जा रहा था जिसका विज्ञापन वे तालाब थे जिनके तट सिमटकर नीचे चले गए थे और पानी तलछट में छूटा रह गया था। लगता किसी सुबह जब लोग जाएँगे, तालाब सूखे मिलेंगे। वह शहर में सबके लिए अन्तिम दिन होगा। इधर सारे अन्देशों में घिरा जीवन था, उधर देश के जल-थल होने और जगह-जगह सैलाब की खबरें थीं। ट्रांज़िस्टर और टी.वी. पर वर्षा का उत्सव मनाते, मेघ और मल्हार, झड़ी और फुवार के गीत थे जिनमें बिजली-

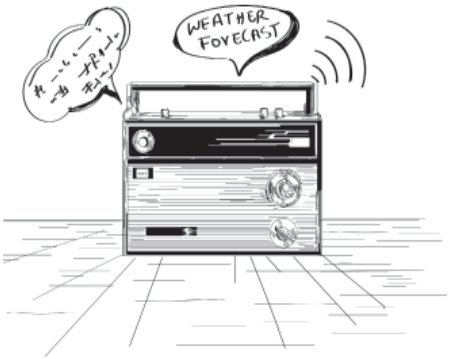

बादल-पानी और दिल की धड़कन का लेखा-जोखा था। शहर में रहने वाले यह मानने पर मजबूर होते जा रहे थे कि वह सब किसी और जनम और जीवन से सम्बन्धित था जिसे उन्हें भूलकर जीना था। एक बेबसी का एहसास होना गुस्से से भरता जा रहा था। सड़क के दुकानदारों की ही तरह।

दरअसल, यह सड़क और इसका बाज़ार कई मायने में शहर का प्रतिनिधित्व करते थे। यहाँ मालदार से लेकर मामूली पूँजीवाले व्यवसायी दुकानें खोले बैठे थे, धर्म और जाति में विभाजित हुए बिना। जब चिलचिलाती धूप में वह कीमती कपड़े, बरसाती जूते पहने अजनबी, हाथ में फोल्डिंग छतरी लिए, नपे-तुले कदम उठाता सड़क से गुज़रता तो सब लोग एक-समान अपमानित अनुभव करते और उसके नज़र से ओझल होते ही, बिना उसका नाम भी लिए, अपने-अपने काम में जुटकर खुद को थकाने और उसको भुलाने के जतन करने लगते।

धीरे-धीरे लोगों को सारी उलझनें, निराशाएँ और गुस्सा टाँगने को 'बरसात-क्यों-नहीं-हो-रही' की खूँटी मिल गई थी। इस खूँटी को हर एक व्यक्ति मनमानी सूरत-शक्ल में ढालने में लग गया था। देश में राजनीति के नाम पर जो अप्रिय हो रहा था, परिवारवालों को जो एक-दूसरे से गिले-शिकवे थे, धन्धे में जो घाटा था, प्रेम में जो असफलता या दोस्ती में जो धोखाधड़ी, सब किसी क्षण बरसात न होने के गुस्से की आँच को भड़का जाते। हर कोई यह मानकर चलने लगा था कि उसका पड़ोसी इस संकट का कारण था। जैसे सड़क के दुकानदारों के लिए फोल्डिंग छतरी लेकर गुज़रनेवाला सारी मुश्किलों की जड़ और वर्षा न होने का कारण तय हो चुका था। एक-दूसरे से कहे बगैर, यह लोगों की आम सहमति बन गई थी। आपस में लड़ने का जोखिम उठाए बिना उन्होंने फोल्डिंग छतरीधारी को अपना दुश्मन और गुस्से का निशाना बनाना तय कर लिया था। दिन की एक खास घड़ी, अब वे उसके आने की प्रतीक्षा करने लगे थे।

राह से गुज़रने वाले व्यक्ति में, अगर वह चिलचिलाती धूप में छतरी लेकर न चलता तो अलग से कोई विशेषता नहीं थी। वह किसी कम्पनी के सेल्समैन से लेकर किसी बैंक में काम करनेवाले कर्मचारी तक, कुछ भी हो सकता था। यह अनुमान इसलिए लगाया जा सकता था कि वह कपड़े-जूते करीने से पहनता था, बाल सँवरे हुए और गले में प्राय: टाई बँधी रहती थी। चलते हुए नाक की सीध में देखता वह किसी गुत्थी को सुलझाता, सोचता नज़र आता था। पूरे बाज़ार में उसकी किसी से अलेक-सलेक नहीं थी। वह रोज़ आता दिखाई देता। उसे सड़क से लौटकर

जाते किसी ने नहीं देखा था। उसके कदम उठाने में एहतियात थी जैसे एक-एक पैर तय करके रख रहा हो। धीरे-धीरे सबको पक्का विश्वास हो गया था कि उनके 'पानी-कब-गिरेगा' सोचते चेहरों को देखता, व्यंग से मुस्कुराता, वह लहक-लहककर कदम उठाता है। उसकी एक-एक अदा उन्हें चिढ़ाने की है।

आसपास के दुश्मनों से बेनियाज़ फोल्डिंग छतरीधारी सड़क पर रोज़ अपना रास्ता तय कर रहा था।

बीती रात टेलीविज़न पर, धूप में जलते, नफरत में सुलगते शहर ने जो फिल्म देखी थी, उसके फोकस में बरसात और पानी में भीगते-गाते-नायक-नायिका, नदी-नाले और हरियाली थी। साथ ही मौसम की भविष्यवाणी, सेटेलाइट द्वारा खींचे गए चित्र सहित, अगले दिन शहर में भारी बरसात की थी। चित्र में घने बादल सबको शहर पर घिरे नज़र आए थे और अनेक बार टूटी आशा फिर जुड़ी थी कि शायद इस बार पानी गिर जाए। बरसात के ख्वाब देखता शहर रातभर गर्मी में बेचैन रहा था। सुबह जब लोग जागे थे तो आसमान गँदला और सूरज तेज़ी-से चमकता पाया था। पिछली रात की फिल्म और मौसम विभाग की भविष्यवाणी सबको एक भौंडा मज़ाक लगी थी। सारे शहर ने अपने दिनों-दिन सूखते तालाबों का स्मरण किया था और साथ मिलकर सोचा था – 'पानी कब गिरेगा?' और फिर सब अपनी-अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गए थे।

सड़क के बाज़ार की दशा उस दिन इसलिए और खराब थी कि बिजली न होने के कारण कूलर और पंखे बन्द थे। अधिकांश दुकानदार उस समय दुकानों के बाहर बरामदे में साँस लेने को निकले हुए थे जब किसी जादू में बँधकर उन्होंने चौराहे की ओर देखा था जहाँ फोल्डिंग

छतरीवाला, नपे-तुले कदम उठाता प्रवेश कर रहा था। साफ-सुथरे कपड़े, टाई, छाता, धीरे-धीरे मुख्य बाज़ार के बीच आगे बढ़ता। लेटर-बॉक्स, पान की दुकान, अखबार और रिसाले-पत्रिकाओं के स्टॉल के सामने से निकलकर उस पल वह एस.टी.डी.-पी.सी.ओ. के निकट था जब कोई उससे टकराया था। टकराने से उसका सन्तुलन गड़बड़ाया था और वह सँभल भी न पाया था कि किसी और ने बढ़कर धक्का दिया था। वह नाली में गिरते-गिरते बचा था। देखते-ही-देखते वह लोगों से घिर गया था जिनके बीच उसका छाता छीनने के लिए छीना-झपटी शुरू हो गई थी। कुछ ही देर में लोग उसे भूल गए थे। उसका छाता हथियाने के लिए उनमें होड़ लगी थी और आपस में मारपीट शुरू हो गई थी। भीड़ और मारपीट बढ़ती जा रही थी। सड़क पर ट्रैफिक रुक गया था। छीना-झपटी में कुछ लोग घायल हो गए थे। उनके हिमायती और उनसे लड़नेवालों के गिरोह बन गए थे। ज़ोर का धमाका, जो किसी टायर बर्स्ट होने का था, सुनकर लोगों में भगदड़ मच गई थी। सड़क के दोनों ओर दुकानों के शटर गिरने लगे थे। मारपीट बढ़ गई थी। पुलिस आ गई थी और हालात को काबू में रखने के लिए हवाई फायरिंग करनी पड़ी थी। आग-सी तेज़ी-से शहर में बलवे की खबर फैल गई थी। आसार कर्फ्यू लगने के थे कि लोगों

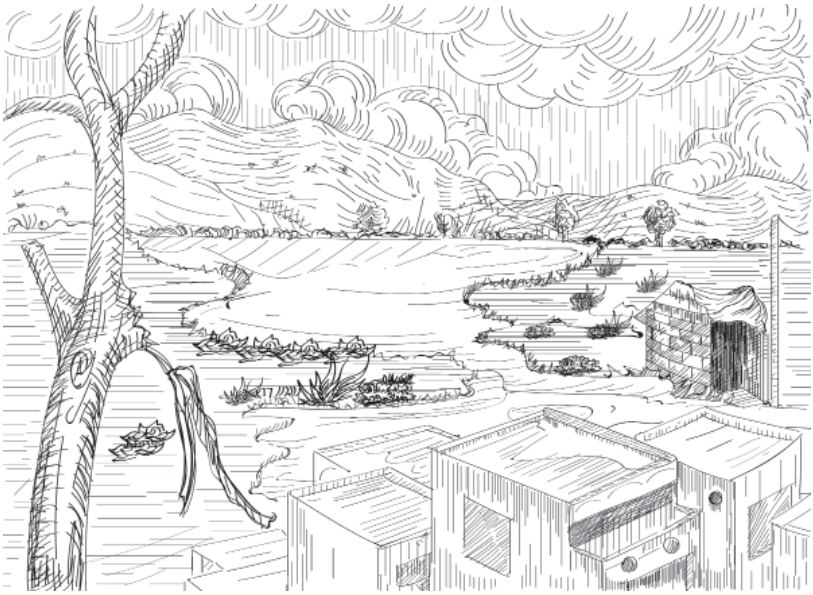

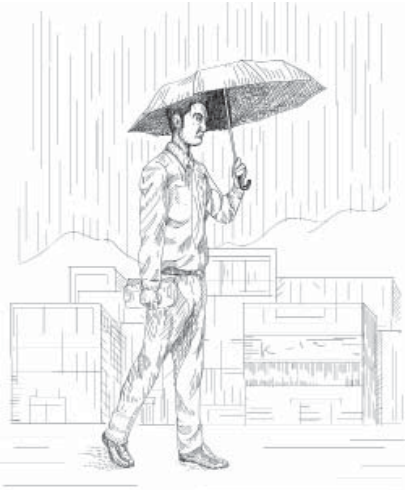

का ध्यान बढ़ते अँधेरे और आकाश में घिर आए बादलों की ओर गया था। इससे पहले कि कर्फ्यू का सोचा जाता, शहर में अटाटूट बारिश शुरू हो चुकी थी जो आनेवाले आठ दिन तक बिना एक पल थमे होती रही थी।

शहर में छतरियाँ और बरसातियाँ चौतरफ नज़र आने लगी थीं। सूखते तालाब पानी से लबालब हो गए थे। निचले इलाके डूब में आ गए थे। लोग अपने मकानों की देख-रेख और बरसात के मज़े लेने में लग गए थे। झगड़े की याद बरसात के पानी में घुल गई थी। आठ दिन की झड़ी के बाद भी बादल शहर पर छाए रहे थे और थम-थमकर दिनों बरसते रहे थे।

अगली बार जब अजनबी छतरी लगाए, फुटपाथ और सड़क पर जमे पानी के बीच एहतियात से कदम रखता उस सड़क से गुज़रा, तो न तो उसे किसी ने गौर से देखा, न ही पहचाना। खुद वह यह कभी नहीं समझ पाया कि उस दिन उसकी छतरी को लेकर शहर दीवाना होते-होते क्यों बचा था।

मंज़ूर एहतेशाम (1948-2021): प्रसिद्ध कहानीकार और उपन्यासकार। पद्मश्री सम्मान समेत अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। इंजीनियरिंग की अधूरी शिक्षा के बाद दवाएँ बेचीं और पिछले 25 वर्षों से फर्नीचर का व्यवसाय भी कर रहे थे। निराला सृजनपीठ, भोपाल के अध्यक्ष रहे हैं। अप्रैल, 2021 में कोविड से इनकी मृत्यु हुई।

सभी चित्र: शुभम आचार्य: एक कलाकार के रूप में इनकी रुचि पारिस्थितिकी और पर्यावरण के क्षेत्र में है। परिदृश्य देखना और उन्हें चित्रित करना पसन्द है। सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य जो ऐतिहासिक हस्तक्षेप के कारण बड़े पैमाने पर बदल गए हैं, इनकी कलाकृतियों की एक प्रमुख अवधारणा है।

यह कहानी *तमाशा तथा अन्य कहानियाँ* पुस्तक से साभार।

— — — — —

भूल सुधार

संदर्भ अंक 133 में प्रकाशित लेख *गणेश का सफर और कोविड* में गलतीवश प्रकाशित हो गया है कि उपरोक्त लेख के लेखक रोहित नेमा सरकारी स्कूल में पढ़ाते रहे हैं। इसके सही रूप को इस तरह पढ़ें - रोहित नेमा निम्न आय प्राइवेट स्कूल में पढ़ाते रहे हैं।

दविन्दर कौर उप्पल
एक ज़बरदस्त शिक्षिका

श्याम बोहरे

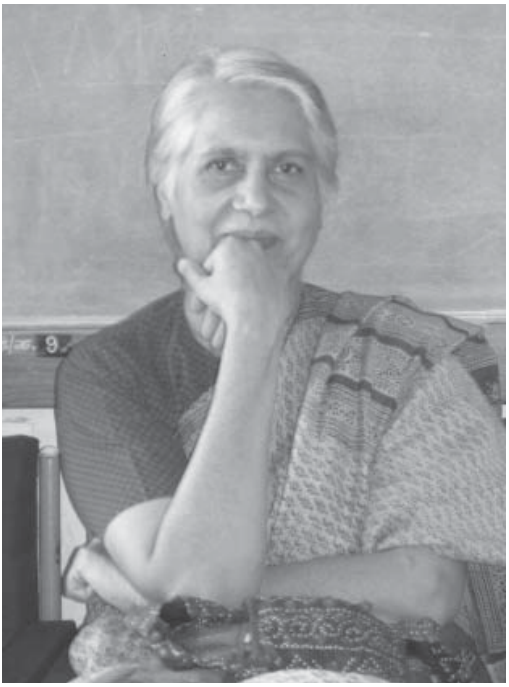

फोटो: फेसबुक से साभार।

हमारे समाज ने शिक्षकों से जो भी अपेक्षाएँ की हैं, वे ज़रूरत से ज़्यादा तो हैं ही, साथ ही अव्यवहारिक भी हैं। अव्यवहारिक इसलिए कि वे घर के, समाज के, स्कूल के और सरकार द्वारा शिक्षा व्यवस्था के संचालन से मेल नहीं खातीं। तमाम तरह की अपेक्षाओं को पूरा करने की कोशिश में अधिकांश शिक्षक पोस्टमैन की तरह ही केवल सन्देश वाहक का काम करते नज़र आते हैं। जिस तरह सन्देश यहाँ से वहाँ ले जाने में पोस्टमैन का अपना कुछ भी नहीं होता, लगभग उसी तरह शिक्षक भी दूसरों के द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम को, दूसरों की लिखी पुस्तकों में दिए

गए सन्देशों को ही, अपने विद्यार्थियों को परोसते रहते हैं। जो औसत से कुछ बेहतर शिक्षक होते हैं, वे मेहनत करके उसी सन्देश को सरल बनाकर पेश करते हैं। वे प्रभावशाली ढंग से, रोचक अन्दाज़ में, सन्देश को इस तरह पेश करते हैं कि विद्यार्थी चमत्कृत और उत्साहित हो जाते हैं। ऐसे शिक्षक विषयवस्तु को कई लेखकों की पुस्तकों से पढ़कर, मेहनत कर, अपने हुनर से उसे आकर्षक बनाते हुए, अलग-अलग तरह के उदाहरणों के ज़रिए कुछ इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि विषय को समझना रोचक और आसान हो जाता है। लेकिन ये कुछ बेहतर शिक्षक भी दूसरों का ही सन्देश देते हैं।

शिक्षकों की इस बिरादरी के मरुस्थल में हरियाली की भाँति अनूठे और सुखद अपवाद भी होते हैं। दूसरे अच्छे शिक्षकों की तरह, ये भी अनेक पुस्तकों और सन्दर्भों से सामग्री बटोरकर उसकी रोचक व्याख्या तो करते ही हैं, साथ ही अपना मौलिक ज्ञान भी मिलाते चलते हैं। इतना ही नहीं, एक कदम आगे बढ़कर उसमें अपना अंश, अपना व्यक्तित्व, विचारधारा, सामाजिक सरोकारों से लैस अपने सपने भी साझा करते रहते हैं। वे पूरी शिद्दत के साथ नए मानवीय समाज को बनाने के लिए अपने विद्यार्थियों को गढ़ते रहते हैं। ऐसे बिरले अपवादों में दविन्दर कौर उप्पल थीं जो 4 मई, 2021 को कोविड की वजह से जीते-जागते इन्सान से एक कहानी बन गईं। सामाजिक सरोकार, गैरबराबरी के खिलाफ हमेशा खड़े रहना, वंचितों की पक्षधर, खासकर महिलाओं के प्रति संवेदनशील आचरण, जो गलत लगे उसके खिलाफ पूरी ताकत से खड़े रहना, अध्ययनशीलता और अध्यापन के प्रति गम्भीरता के साथ-साथ अपने विद्यार्थियों की समस्याओं से जूझना आदि अनेक गुणों ने दविन्दर को विद्यार्थियों का फ्रेंड, फिलॉसफर और गाइड बना दिया। दविन्दर हमेशा अपने विद्यार्थियों के सामने अकादमिक विषयों को सामाजिक सन्दर्भों में प्रभावी ढंग से पेश करने की कोशिश करतीं।

मानवीय समाज के लिए संवदेनशील इन्सान बनाने का यह काम विश्वविद्यालय की सीमाओं में रहकर व केवल पुस्तकों के द्वारा अधिक प्रभावी ढंग से नहीं हो सकता। दविन्दर विश्वविद्यालयीन अकादमिक जगत के साथ-साथ, समाज में जाकर उसके सुख-दुख में, उसकी चिन्ताओं में शामिल होकर, समाज से लगातार सीखती रहतीं और उसे कुछ देती-लेती रहतीं। प्रदेश में सार्थक काम करने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं में उनकी औपचारिक और अनौपचारिक सक्रिय उपस्थिति बनी रहती। किसी संस्था के निदेशक मण्डल में, तो किसी की समिति में, तो किसी में

कुछ भी न होते हुए भी बहुत कुछ होतीं। वे *एकलव्य* की विशाखा समिति की प्रमुख रहीं। प्रदेश में चल रहे आन्दोलन और आन्दोलनकारियों की ओर वे अपने आप खिंची चली आती थीं। अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों, सभाओं, बैठकों, प्रदर्शनों में वे अक्सर मौजूद रहतीं। निरन्तर अध्ययन और सामाजिक संस्थाओं से सम्पर्क के कारण दविन्दर अकादमिक सिद्धान्तों और ज़मीनी सच्चाई के तालमेल से विषय को व्यवहारिक बना देतीं। वे पढ़ाते समय पाठ्यक्रम की विषयवस्तु, सामाजिक सरोकारों, मानवीय संवेदनाओं के साथ बेहतर समाज के सपनों को सन्तुलित ढंग से पेश करतीं।

भोपाल स्थित माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय से पहले वे सागर विश्वविद्यालय के पत्रकारिता और जनसंचार विभाग में अध्यापक थीं। मैं जब कभी अपने घर, सागर जाता तो दविन्दर से मुलाकात होती थी। दो-तीन बार मुलाकात उस समय हुई जब वे अपने किसी विद्यार्थी की स्टोरी छपने को सेलीब्रेट कर रही होती थीं। अपने विद्यार्थियों की उपलब्धियों के प्रति उनका उत्साह वाकई कमाल का होता था। उम्र में उनसे वरिष्ठ होने के बावजूद, ऐसा लगता था कि अभी दविन्दर का विद्यार्थी बन जाऊँ।

वे सागर विश्वविद्यालय की महिला छात्रावास में रहती थीं। वहाँ शायद छात्रावास अधीक्षक भी थीं। वहाँ रहते हुए दविन्दर छात्राओं से जिस तरह दोस्ताना व्यवहार करतीं, जिस तरह से दकियानूसी नियमों और परम्पराओं को धूर्तता बतातीं, जिस तरह से छात्राओं को आज़ाद रहने देतीं, वह उन्हें एक अराजक और विद्रोही के फ्रेम में फिट कर सकता था, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। यह कमाल था दविन्दर के परिपक्व, शालीन, गम्भीर, संयमित और उदार तथा स्पष्ट विचारों का, जिसके कारण आज़ाद होने के बावजूद छात्राएँ अराजक और उद्दण्ड नहीं हो पाती थीं। दविन्दर के महिला छात्रावास के कारनामों से समझ में आया कि आज़ाद रहने देने से युवा अधिक समझदार और ज़िम्मेवार बनते हैं।

श्याम बोहरे: प्रशासनिक अकादमी, भोपाल से रीडर के पद से सेवानिवृत्त। पंचायती राज पर बहुत काम किया है। लिखने-पढ़ने में विशेष रुचि। भोपाल में रहते हैं।

सवालीराम

सवाल: ठण्ड के दिनों में सुबह हमारे मुँह से भाप क्यों निकलती है?

- हिरण खेड़ा, सिवनी मालवा, ज़िला-होशंगाबाद, मध्य प्रदेश

जवाब: आपने शायद इस बात पर ध्यान दिया हो या हो सकता है कि आपने भी यह खेल अपने बचपन में खेला हो जिसमें सुबह-सुबह, विशेषकर सर्दी के दिनों में, बच्चे अपने मुँह से भाप निकालने का खेल खेलते हैं और अपने संगी-साथियों को उस भाप को धुआँ बताकर मस्ती करते हैं।

वास्तव में हमारे वातावरण में पानी की नमी भी गैस के रूप में उपस्थित होती है। हवा में कितनी नमी वाष्प (गैस) के रूप में रह पाएगी, यह तापमान और दबाव पर निर्भर होता है। पानी की भाप हमें दिखाई नहीं देती है, अर्थात अदृश्य होती है। जब वातावरण का तापमान गिरकर एक विशिष्ट स्तर पर आ जाता है तो वातावरण में गैसीय रूप में उपस्थित नमी, पानी की बहुत छोटी-छोटी बूंदों में परिवर्तित हो जाती है जो हमें दिखने लगती है। इस तापमान को औसत ओस बिन्दु (Average Dew Point) कहा जाता है और वाष्प के द्रव में बदलने की इस प्रक्रिया को संघनन (condensation) कहते हैं।

सर्दियों में वातावरण का तापमान शरीर के तापमान की तुलना में

काफी कम होता है। कभी-कभी वातावरण का तापमान औसत ओस बिन्दु से कम हो जाता है। ओस बिन्दु मतलब वह तापमान जिस पर वातावरण में गैस के रूप में उपस्थित पानी ओस बनने लगता है।

आप यह बात आसानी-से जाँच सकते हैं कि हमारी साँस गर्म होती है और नमी से संतृप्त होती है। सर्दी के मौसम में मुँह और नाक से निकलने वाली गर्म साँस हवा के सम्पर्क में आकर ठण्डी हो जाती है। साथ ही, गैसीय नमी भी ठण्डी हो जाती है। यदि वह इतनी ठण्डी हो जाए कि उसमें उपस्थित गैसरूपी नमी संघनित होने लगे तो वह छोटी-छोटी बूंदों में परिवर्तित हो जाती है और एक छोटे-से बादल या धुएँ के गुबार के रूप में दिखने लगती है। नमी के इसी छोटे-से बादल को मुँह और नाक से निकलता धुआँ समझकर बच्चे और हम सभी खुश होते और हँसते हैं।

आपने यह भी देखा होगा कि सर्दियों के मौसम में किसी बन्द गर्म कमरे में या फिर ठण्ड कम होने के बाद खुले में भी मुँह से निकलने वाले 'धुएँ' की मात्रा या तो कम हो जाती है या फिर बिलकुल समाप्त ही हो जाती है। इसका सीधा-सीधा अर्थ है कि जैसे-जैसे बाहर के वातावरण का तापमान बढ़ता जाता है, हमारी साँस के साथ निकलने वाली भाप भी दिखना कम या खत्म हो जाती है।

आइए, अब सर्दियों में मुँह और नाक से भाप निकलने की प्रक्रिया के वैज्ञानिक तथ्य का विश्लेषण करते हैं। वातावरण में पानी तीन अवस्थाओं में पाया जाता है। ठोस अवस्था में इसे बर्फ, द्रव अवस्था में जल और गैसीय अवस्था को भाप कहा जाता है। पानी के अणु – H_2O ठोस अवस्था में एक-दूसरे से मज़बूती के साथ जुड़े रहते हैं, द्रव अवस्था में यह जुड़ाव थोड़ा कम मज़बूत और गैसीय अवस्था में बहुत कमज़ोर होता है। ठोस अवस्था में पानी के इन अणुओं की गतिज ऊर्जा न के बराबर और गैसीय अवस्था में सबसे अधिक होती है। सर्दियों में जो अदृश्य नमी वातावरण में होती है, उसके अणु वातावरण के कम तापमान के कारण अपनी ऊर्जा खोकर पास-पास आ जाते हैं और पानी की छोटी-छोटी बूंदों के रूप में संघनित होकर दिखने लगते हैं। आपने देखा होगा कि सर्दियों के मौसम में वातावरण में अक्सर घना कोहरा बन जाता है जिससे हमें दूर तक दिखना भी बन्द हो जाता है। यह कोहरा इसी संघनन की प्रक्रिया का परिणाम है अर्थात वातावरण में मौजूद अदृश्य गैसरूपी नमी संघनन की प्रक्रिया के कारण छोटी-छोटी बूंदों में परिवर्तित होकर धुएँ जैसे कोहरे का रूप ले लेती है। वातावरण में उपस्थित अदृश्य गैसीय नमी के संघनन की इसी प्रक्रिया का एक और सबसे अच्छा उदाहरण है फ्रिज से निकाली

गई ठण्डे पानी की सूखी बोतल का बाहर निकाले जाने पर, कुछ ही देर बाद गीला हो जाना।

इसके साथ ही हम यह भी देखते हैं कि जब वातावरण का तापमान बहुत कम हो जाता है (ठण्डे इलाकों में या फिर बर्फीले स्थानों पर), तो वातावरण में मौजूद अदृश्य गैसरूपी नमी या फिर साँस के साथ निकलने वाली नमी, द्रव रूप में आने के बाद और ठण्डी होकर बर्फ के छोटे-छोटे कणों में परिवर्तित होकर चेहरे पर जम जाती है। आपने पर्वतारोहियों या फिर ऊँचे पहाड़ों पर डटे सैनिकों के चित्रों में उनके चेहरों और कपड़ों पर जमी बर्फ अवश्य देखी होगी। वहाँ के वातावरण की नमी में पानी के अणु अपनी गतिज ऊर्जा पूरी तरह खोकर ठोस अवस्था अर्थात बर्फ के रूप में जम जाते हैं।

तो बचपन का मुँह से धुआँ निकालने का खेल है तो मज़ेदार और इसके पीछे के तथ्य की समझ इसे और भी रोचक बनाती है।

कोकिल चौधरी: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

— — — — — —

इस बार का सवाल

सवाल: हमें सपने क्यों आते हैं?

- कक्षा-8, गवर्नमेंट हायर सेकेंडरी स्कूल, पवारखेड़ा, होशंगाबाद, मध्य प्रदेश

इस सवाल के बारे में आप क्या सोचते हैं, आपका क्या अनुमान है, क्या होता होगा? इस सवाल को लेकर आप जो कुछ भी सोचते हैं, सही-गलत की परवाह किए बिना लिखकर हमें भेज दीजिए। सवाल का जवाब देने वाले पाठकों को *संदर्भ* **की तीन साल की सदस्यता उपहार स्वरूप दी जाएगी।**

एक भ्रूणावस्था क्लाउनफिश (*Amphiprion percula*) अपने अण्डे के अन्दर विकसित होती हुई। क्लाउनफिश के विकास को बारीकी से दर्शाती ये तस्वीरें उसके विकास के पहले, तीसरे, पाँचवें और नौवें दिन खींची गई थीं; पहली तस्वीर तो निषेचन यानी फर्टिलाइज़ेशन के चन्द घण्टों बाद ही ली गई थी। फोटोग्राफर डेनिएल नॉप ने इस तस्वीर के लिए निकॉन्स स्मॉल वर्ल्ड कॉम्पीटीशन फॉर फोटोमाइक्रोग्राफी में दूसरा स्थान जीता।

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, राजेश खिंदरी की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन, जमनालाल बजाज परिसर,
जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) द्वारा एकलव्य से प्रकाशित तथा
भण्डारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।